तो धर्म का व्यतिक्रम हो जाता, अतः पत्नी पद दिया है कि ये पत्नियां थीं इसलिए इनमें धर्म साधकत्व था।

यदि भगवान् यह रमण अपनी कामना पूर्ति के लिए नहीं करते हैं किन्तु स्त्रियों की कामना पूर्ति के लिए करते हैं, तो इस प्रकार की लीला से काम की सर्वथा पूर्ति न होगी, क्योंकि एक पति, १६ सहस्र स्त्रियों के काम की पूर्ति कर नहीं सकता है, पुरुष के काम से स्त्रियों में अष्टगुणा काम रहता है, जब एक पुरुष के एक गुणावाली काम की पूर्ति के लिए बहुत स्त्रियों की अपेक्षा होती है, तब अष्ट गुणा काम वाली १६ सहस्र स्त्रियों के काम की पूर्ति एक पति से कैसे होगी? इस शङ्का को मिटाने के लिए कहा है, 'तावन्ति बिभ्रद्रूपाणि' आपने भी १६ सहस्र रूप धारण कर लिए. इस प्रकार उनके काम को पूर्ति के लिए ही वे रूप प्रकट हुए, जिससे एक स्त्री का अष्ट गुणा काम भी उसी एक स्वरूप से पूर्ण होगा।

स्त्रियों में मात्सर्य दोष स्वाभाविक है, इसलिए एकत्र यानि एक ही स्थान में रमण से मात्सर्य होगा, उसके निवारणार्थ प्रत्येक को महल पृथक् पृथक् दिए, वे महल भी सबके समान सर्व समृद्धि युक्त बने हुए थे उन अलग अलग महलों में प्रत्येक के साथ पृथक् पृथक् रमण किया, जिससे मत्सरता भी न हुई, आप प्रत्येक महल में एक स्वरूप से प्रविष्ट हुए और जब तक सम्यक् प्रकार से उनको पूर्ण आनन्द प्राप्त हो, वैसे तब तक रमण करते रहे, यों तात्पर्य है ॥५॥

आभास—एवं प्रत्येकरमणमुक्त्वा गृहस्थतुल्यता जातेति विशेषरमणकथनार्थं समुदायेनापि रमणमाह **प्रोत्फुल्ले**ति सप्तभिः।

आभासार्थ—एक एक स्त्री के साथ अकेले घर में रमण तो गृहस्थ के समान रमण) हुआ अतः विशेष प्रकार के समुदाय के साथ किए हुए उत्तम रमण का वर्णन 'प्रोत्फुल्ल' श्लोक से सात श्लोकों में करते हैं—

श्लोक—प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदाम्भोजरेणुभिः।
वासितामलतोयेषु कूजद्द्विजकुलेषु च ॥६॥

श्लोकार्थ—जल में उत्पन्न प्रफुल्लित कल्हार, कुमुद तथा कमलों की रेणुओं से सुगन्धित निर्मल जल वाले और जहाँ पक्षियों के समूह कलरव कर रहे हैं, वैसे छोटे तालाबों में घरों के भीतर रमण (जल-क्रीड़ा) करने लगे ॥६॥

सुबोधिनी—प्रकर्षेण उत्फुल्लाः जलपुष्पजातयः कह्लारकुमुदाम्भोजजातयः सन्ध्यारात्रिदिनविकासयुक्ताः तासां रेणुभिः वासितानि यान्यमलतोयानि तद्युक्तेषु भगवान् रेम इति सम्बन्धः। कूजतां द्विजानां कुलानि यत्र। गन्धसम्पत्तिः शब्दसम्पत्तिश्च तत्रोक्ता। स्पर्शरसौ तत्र सहजौ। रूपं तु सिद्धमेव ॥६॥

व्याख्यार्थ—जल में उत्पन्न पुष्पों की जाति वाले कल्हार, कुमुद तथा कमल जहाँ खूब खिल

रहे हैं, ये क्रमश: सन्ध्या, रात्रि और दिन में खिलते हैं, उन पुष्पों की रेणुओं से सुगन्धित और निर्मल जल वाले छोटे तालाबों से युक्त मकानों में भगवान् समुदाय रमण करने लगे. जहां पक्षियों के कुल कलरव कर रहे हैं,इसी प्रकार वहां गन्ध सम्पत्ति का वर्णन किया,स्पर्श और रस दोनों वहाँ[1] सहज ही है, रूप[2] तो सिद्ध ही है । ६।

श्लोक—विजहार विगाह्याम्भो ह्रदिनीषु महोदयः ।
कुचकुङ्कुमलिप्ताङ्गः परिरब्धश्च योषिताम् ॥७॥

श्लोकार्थ—भगवान् जब उन सरोवरियों के जल में प्रवेश कर विहार करने लगे, तब आलिङ्गन करते समय स्त्रियों के स्तनों पर लगी हुई कुमकुम (केसर) से आपके श्रीअङ्ग भी लिप्त हो गए हैं ॥७॥

सुबोधिनी- तत्र अम्भो विगाह्य विजहार जलक्रीडां कृतवान् । ननु जलक्रीडायाः क्वोपयोग इति चेत् तत्राह महोदय इति । महानभ्युदयो यस्य । तेनैवं कर्तव्यमित्यर्थः । तत्रापि शोभामाह कुचकुङ्कुमैरालिप्ताङ्ग इति दूरीकरणार्थं वा जलावगाहनम् । तत्रत्यरसस्य स्वरूपमाह योषितां परिरब्ध इति । योषितां सम्बन्धी ताभिश्च परिरब्ध इत्यर्थः ॥७॥

व्याख्यार्थ—वहाँ पानी में प्रवेश कर जल क्रीडा करने लगे, जल में क्रीड़ा लाभ क्या ? जिसके उत्तर में कहा है कि 'महोदयः' क्रीड़ा से भगवान् का महान् वैभव प्रकट हो रहा है, इससे यों (ही) करना चाहिए, यह भावार्थ है, वहां को शोभा का वर्णन करते हैं, आलिङ्गन से स्त्रियों के स्तन पर लगी कुमकुम केसर) से भगवान् के सकल अङ्ग लिप्त हो गए थे, उसके दूर करने के लिए जल में अवगाहन किया, वहां जो रस प्रकट हुआ उसके स्वरूप का वर्णन करते हैं, 'योषितां परिरब्धः' पद से बताया है, कि भगवान् को स्त्रियों ने आलिङ्गन किया है एवं आप स्त्रियों के सम्बन्धी हैं अतः इस लीला से भीतर रहे हुए रस को बाहर प्रकट कर दिखाया है ॥७॥

आभास—तदा प्राकाराद्बहिः स्थितै रसोत्पादनार्थं गानस्तोत्रादिकं कर्तव्यं तदपि कृतवानित्याह **उपगीयमानो गन्धर्वैरिति ।**

आभासार्थ—उस काल में महलों से बाहर स्थितों को रस के उत्पादन के लिए गान स्तोत्रादि करने चाहिए, वह भी करने लगे, वह 'उपगीयमानो' श्लोक में कहते हैं-

श्लोक—उपगीयमानो गन्धर्वैर्मृदङ्गपणवानकान् ।
वादयद्भिर्मुदा वीणाः सूतमागधबन्दिभिः ॥८॥

१- घरों में गृहिणी गृहमुच्यते' इस उक्ति के अनुसार स्त्री को ही घर कहा है अतः स्त्री के स्पर्श से और चुम्बन से आनन्द तो स्वभाव सिद्ध है,

२- रूप तो भगवान् ने इसलिए ही इस प्रकार के धारण किए हैं-'लेखकार'

श्लोकार्थ—गन्धर्व प्रेम से मृदङ्ग, पणव, आनक और वीणा बजा रहे थे तथा सूत, मागध व बन्दीजन भगवान् का यश गा रहे थे ।।८।।

सुबोधिनी—उपगानं तन्नामगीतानां गानम् वाद्यमप्याह मृदङ्गपणवानकान् वीणाश्च वादयद्भिरिति । अन्येषामपि प्रशंसामाह सूतमागधबन्दिभिरिति ।।८।।

व्याख्यार्थ—भगवान् के नाम गीतों का गान होने लगा और मृदङ्ग, पणव, आनक तथा वीणा आदि वाद्य बजने लगे, गन्धर्वों के सिवाय सूत, मागध और बन्दीजन भी प्रशंसा करने लगे ।।८।।

आभास—एवं बहिरुद्दीपनादिकमुक्त्वा स्त्रीणां स्वैरलीलामाह सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिरिति ।

आभासार्थ - इस प्रकार बाहर से कामोत्तेजक साधनादि कह कर अनन्तर 'सिच्यमानोऽच्युत' श्लोक में स्त्रियों की मनमानी स्वच्छन्द लीला का वर्णन करते हैं—

श्लोक—सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसन्तीभिः स्म रेचकैः ।
प्रतिसिञ्चन्विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ।।९।।

श्लोकार्थ—स्त्रियाँ हँसती-हँसती भगवान् को पिचकारियों से भिगोती थी और भगवान् उनको भिगो रहे थे । उस समय की शोभा ऐसी हो रही थी, जैसी कुबेर और यक्षिणियों की परस्पर क्रीड़ा करने के समय होती है ।।९।।

सुबोधिनी—अच्युतत्वात् बह्वीभिरपि न भगवतः कामस्य कापि हानिः । रेचकैः चर्मवंशनिर्मितैः, स्वभावतोऽपि हास्यं जयाद्वा । उभयथापि तासां परमसन्तोष उक्तः । अत्यन्तं स्पष्टः कामः ईश्वरस्य निरूपयितुं अनुचितमिति स्मेत्याह । ताः प्रतिसिञ्चन् विशेषेण चिक्रीडे । यक्षाः कामरसकलहे निपुणाः । तथा प्रकृते स्त्रीणां भगवतश्चेति एकदेशप्रसिद्धिः माहात्म्यं सूचयतीति अयुक्तोऽपि कुबेरयक्षिणीनां दृष्टान्तभावो निरूप्यते । यथा समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव इति वाक्यानि ।।९।।

व्याख्यार्थ—स्त्रियां बहुत थीं जिससे भगवान् के काम में कमी हुई होगी ? इस शङ्का के निवारण के लिए 'अच्युत' नाम दिया है, जिससे बताया है कि बहुत स्त्रियां होते हुए भी भगवान् के काम में च्युति (हानि) नहीं हुई, चमड़े अथवा बांस की बनी हुई पिचकारियों से भगवान् को भिगोती हुई हँस रही थी, कारण कि स्त्रियों का एक स्वभाव मुस्कराने का होता है फिर भगवान् पिचकारियों से उतना न भिगो सके जितना कि इन्होने भिगोया इस विजय से हँस रही थी, दोनों तरह इनको परम सन्तोष कहा है, 'स्म' पद कहने का भावार्थ यह है कि, ईश्वर के काम को स्पष्ट रीति से निरूपण करना उचित नहीं है, भगवान् ने भी इन स्त्रियों पर पिचकारियों से जल वर्षाया, इस प्रकार विशेषतया खेलने लगे ।

यक्ष काम रस के कलह में चतुर हैं, वैसे प्रकृत प्रकरण में स्त्रियाँ तथा भगवान् इस प्रकार काम कलह करते हैं। यह केवल एक देश में प्रसिद्धि भगवान् के महात्म्य की सूचक है, यद्यपि कुबेर यक्षिणियों के काम कलह की समता बताना अनुचित है किन्तु मात्र दृष्टान्त भाव से इसका निरूपण किया है। जैसे कहा जाता है कि गम्भीरता में समुद्र समान, धैर्य में हिमालय समान; ये भी केवल दृष्टान्त ही हैं। भगवान् का गाम्भीर्य वा धैर्य इतना तो नहीं है। ९॥

आभास—ततस्तासां रसाभिनिवेशेन विस्मृतदेहानां कामलीलामाह **ताः क्लिन्नवस्त्रे**ति।

आभासार्थ पश्चात् वे स्त्रियाँ रस का भीतर प्रवेश हो जाने से देह को भूलकर जो काम लीला करने लगी, उसका 'ताः क्लिन्नवस्त्र' श्लोक से वर्णन करते हैं—

श्लोक—**ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः**
सिञ्चन्त्य उद्धृतबृहत्कबरप्रसूनाः।
कान्तं स्म रेचकजिहीरषयोपगुह्य
जातस्मरोत्सवलसद्वदना विरेजुः॥१०॥

श्लोकार्थ—वस्त्र भीग जाने से जिनके स्तन और उरुप्रदेश स्पष्ट दीख रहे हैं और पिचकारियों से बचने के लिए भगवान् का आलिङ्गन करने से काम के उत्तेजित हो जाने पर जिनके मुख-कमल खिल रहे हैं एवं भारी केशपाशों से फूल बिखर रहे हैं। ऐसी वे स्त्रियाँ भगवान् को भिगोती हुई विशेष दीप्त हो रही थी॥१०॥

सुबोधिनी—क्लिन्नवस्त्रेण कृत्वा विवृता उद्घाटिता। उरुकुचप्रकृष्टदेशा यासां तादृश्योऽपि सिञ्चन्त्यः। उद्धृतानि बृहत्कबरेभ्यः प्रसूनानि यासाम्। यथा ताः प्रसूनार्थं भगवत्समीपम् यान्ति तथा भगवान्। विवृतावयवा अपि सेचन एव आसक्ता जाताः तदा केशपाशेभ्यः पुष्पाणि गृहीतवानित्यर्थः। अनेन रेचकान्यपि गृहीतवानिति लक्ष्यते। ततो भगवानुच्चहस्तः पुष्परेचकानि गृहीत्वा यदा स्थितः तदा रेचकजिहीर्षया कान्तमुपगुह्य मध्ये जातस्मरेण य उत्सव आसोत्परमानन्दस्तेन लसद्वदनाः सत्यः मध्ये नीलमणेः परितः पद्मरागाणीव विरेजुः॥१०॥

व्याख्यार्थ—भीगे हुए वस्त्रों के कारण जिनके स्पष्ट दीख रहे हैं—स्तन और जांघ प्रदेश। ऐसी भी वे स्त्रियाँ निर्लज्ज हो, पिचकारियों से भगवान् पर जल वर्षा कर उनको अपनी विजय होने के लिए भिगो रही थी। जैसे वे स्त्रियाँ पिचकारियों से जल सिञ्चन करती हुई उसमे मग्न हो भगवान् के पास आती थी, वैसे ही भगवान् भी पिचकारियों से उनको भिगोते हुए उनके पास जब पधारते थे तब उनके केशपाशों से पुष्प ले लेते थे। इससे यह भी जानने में आता है कि पुष्पों की तरह पिचकारियाँ भी भगवान् ने ले ली हैं। पुष्प लेने के लिए जब भगवान् ने भुजा उठाकर पुष्प ले लिए और पिचकारियों को लेने के लिए यों ही खड़े रहे। उस समय काम मत्त कामिनियों ने कान्त भगवान् का आलिङ्गन किया, जिससे विशेष काम के उद्भूत होने से जो उनको परमानन्द

प्राप्त हुआ, उससे उनके मुख चमकने लगे और आप यों सुशोभित होने लगी जैसे कि नीलमणि के चारों ओर पद्मराग शोभते हैं ।।१०।।

आभास—एवं तासां सुखार्थमतिक्रमेऽपि तासां सौन्दर्यमिव भगवतोऽपि सुखमेव जातमित्याह **कृष्णस्त्वि**ति ।

आभासार्थ--इसी तरह स्त्रियों ने सुख प्राप्ति के लिए भगवान् का अतिक्रम किया, तो भी उनको जैसे सौन्दर्य प्राप्ति हुई, वैसे ही भगवान् को भी सुख हुआ; यह 'कृष्णस्तु' श्लोक में वर्णन करते हैं—

श्लोक—कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुङ्कुमस्रक्
क्रीडाऽभिषङ्गधुतकुन्तलवृन्दबन्धः ।
सिञ्चन्मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो
रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः ।।११।।

श्लोकार्थ—स्त्रियों के स्तनों पर लिप्त कुमकुम (केसर) से जिसकी माला लिप्त हो गई है, क्रीड़ा में आसक्ति के कारण जिसके केशपाश के बन्धन शिथिल हो गए हैं । ऐसे श्रीकृष्ण उन पर जल-सिञ्चन करते थे, इसी तरह स्त्रियाँ भी आप पर जल सीञ्चती थी । जैसे चारों ओर हथिनियों से घिरा हुआ हस्ती उनसे जल-क्रीड़ा करता है, वैसे आप भी स्त्रियों से जल-क्रीड़ा करते थे ।।११।।

सुबोधिनी–तासां स्तनेषु विषज्जितं यत् कुङ्कुमं तद्युक्ता स्रक् माला यस्य, तादृशो जातः। ततः क्रीडायां योऽभिषङ्गः आसक्तिस्तेत धुता मुक्ताः कुन्तलवृन्दानां बन्धाः यस्य, नानाविधो बन्धः कौतुकार्थं कृत इति प्रतिभाति । यथा तासामवयवप्राकट्यं तथा भगवतोऽपि कुङ्कुमसम्बन्धः केशपाशविमोकश्च । एवं तुल्यतया स्वयं सिञ्चन्, अविचारार्थं तादृशदाशायुक्ताभिः परिषिच्यमानः रेमे । अमर्यादया रमणं प्रतिपादयन् गोपीष्विव दृष्टान्तमाह करेणुभिरिवेभपतिरिति। करिणीभिर्वेष्टितो यथा गजेन्द्रो भवति ।।११।।

व्याख्यार्थ—स्त्रियों के स्तनों पर लिप्त कुमकुम से जिनकी माला लिप्त हो रही है। ऐसे श्रीकृष्ण एवं क्रीड़ा से आसक्त होने से जिनके केशपाश बन्धन खुल गए हैं, यह अनेक प्रकार का बन्ध भगवान् कृष्ण ने कौतुक के लिए किया है, यों भासता है । जैसे-जैसे उन (स्त्रियों) के स्तन खुलते रहते थे, वैसे-वैसे उन खुले स्तनों पर लिप्त कुमकुम का सम्बन्ध भगवान् के साथ हो जाता था और उनके केशपाश के बन्धन ढीले पड़ते जाते थे । इसी प्रकार स्वयं भगवान् तुल्यता से उन पर जल सींचते थे, वे स्त्रियाँ तो मर्यादा मुक्त हो भगवान् पर सिञ्चन करती थी । इस प्रकार भगवान् उनसे जल विहार करते हुए रमण करने लगे ।

यह रमण मर्यादारहित है, यों प्रतिपादन करते हुए, गोपियों के चरित्र कहते हुए जैसा

दृष्टान्त दिया था, वैसा ही दृष्टान्त देते हैं कि 'करेणुभिरिवेभपतिः'—जैसे हस्ती हस्तिनियों से घिरा हुआ उनसे रमण करता है, वैसे ही भगवान् भी इन स्त्रियों से घिरे हुए होकर उनसे रमण करते हैं ।।११।।

आभास—एवं समुदायवर्णनमुक्त्वा एतस्या लीलायाः षड्गुणवत्त्वं प्रतिपाद्य तत्रोपजीविनां दानेन तदुपसंहरति **नटानां नर्तकीनां चेति** ।

आभासार्थ—इस प्रकार समुदाय रमण का वर्णन कर और यह लीला षड्गुण वाली है । यह छः श्लोकों से बताकर, उस पर आश्रितों को दान देकर इस लीला का 'नटानां' श्लोक से उपसंहार करते है—

श्लोक—**नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम् ।**
क्रीडालङ्कारवासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रियः ।।१२।।

श्लोकार्थ—नट, नर्त्तकी और गीत तथा वाद्यों पर आजीविका करने वालों को भगवान् कृष्ण और उनकी स्त्रियों ने क्रीड़ा-सम्बन्धी अलङ्कार और वस्त्र दिए ।।१२।।

सुबोधिनी—गीततालानुसारेण ये नृत्यन्ति ते नटाः, केवलनृत्येन रसाभिनयकर्त्र्यः नर्तक्यः । नटा एव स्त्रीपुरुषा वा, चकारात्तत्सम्बन्धिभ्योऽपि भगवान् दत्तवान् । गीतवाद्योपजीविनोन्ये । क्रीडासाधनानि अलङ्कारा वासांसि च । क्रीडार्थमेव वा योऽलङ्कारः तदर्थं च यानि वासांसि तानि कामशास्त्रे निरूपितानि तानि सर्वाणि कालान्तरोपभोगार्थं न स्थापितानि किन्तु बन्दिभ्यः अदात् भगवान् दत्तवान् । तथा तत्स्त्रियोप्यदुः । ।।१२।।

व्याख्यार्थ—गीत और ताल के अनुसार जो नाचते हैं, वे नट केवल नृत्य से जो रस का अभिनय करती हैं, वे नर्त्तकियाँ अथवा 'नट और नर्त्तकियाँ' पदों से नट ही कहे हैं, वे स्त्रियाँ वा पुरुष हो । 'च' पद से यह सूचित किया है कि भगवान् ने नटों के सम्बन्धियों को भी पारितोषिक दिए । नटों के अलावा दूसरे गीत और वाद्य पर आजीविका करने वाले कहे हैं । क्या दिया ? क्रीड़ा के साधन अलङ्कार और वस्त्र । क्रीड़ा के लिए ही जो अलङ्कार हैं, उनके लिए जो वस्त्र हैं, वे सब काम शास्त्र में कहे हुए हैं, वे सब दूसरे समय उपयोग के लिए नहीं रखे, किन्तु बन्दीजनों को भगवान् और उनकी स्त्रियों ने सब दे दिए ।।१२।।

आभास - एवं साधारणासाधारणलीला निरूपिताः एतन्निरूपणस्य लौकिकफलव्यावृत्त्यर्थं फलान्तरमाह **कृष्णस्यैवं विहरत** इति ।

आभासार्थ—इसी तरह साधारण और असाधारण दोनों प्रकार की लीलाओं का निरूपण किया । इन लीलाओं का फल लौकिक नहीं है । यह बताने के लिए इस 'कृष्णस्यैवं' श्लोक में उन लीलाओं का फल अलौकिक बताते हैं—

श्लोक – कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः ।
नर्मकेलिपरिष्वङ्गैः स्त्रीणां किल हृता धियः ॥१३॥

श्लोकार्थ—इसी तरह विहार करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् ने भाषण, गति, अवलोकन और मन्द-मन्द मुस्कान, ठठ्ठा-ठठोली, हास्य वचन व आलिङ्गन से स्त्रियों की बुद्धियाँ (अन्तःकरण) हर ली ॥१३॥

सुबोधिनी – एवं सामान्यविशेषप्रकारेण विशेषेण चित्तं हरतो विहारं कुर्वतः । चतुर्विधैर्भावैः स्त्रीणामन्तःकरणचतुष्टयं हृतमित्याह । आदौ गतिः सम्मुखमागमनम्, तत आलाप, ततो जाते वाग्बन्धे कामकलाभिरीक्षणम्, ततो भावप्रकाशकानि स्मितानि, ततः कायिकादिविलासाः, ततः नर्म परिहासोक्तिः, केलिः क्रीडा मानसी. परिष्वङ्गा द्वादशविधालिङ्गनानि अष्टविधानि वा । एवं सर्वप्रकारैः स्त्रीणां धियः अन्तःकरणानि हृतानि । किलेति प्रसिद्धिः पूर्ववत् । एतानि प्रपञ्चविस्मृतौ साधनान्येव जातानि न तु प्रपञ्चे भावसाधकानीत्यर्थः ॥१३॥

व्याख्यार्थ—इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने सामान्य तथा विशेष प्रकार से विहार करते हुए स्त्रियों के अन्तःकरण चतुष्टय को चतुर्विध भावों से हर लिया।

प्रथम सन्मुख आए, पश्चात् आलाप, बाद में वाणी से बन्ध (प्रतिज्ञा) होने पर काम की कलाओं से देखना। भावों को प्रकाशित करने वाली मन्द-मन्द मुस्कान, अनन्तर काया आदि के विलास-परिहास के वचन, मानसी क्रीड़ा; पश्चात् बारह प्रकार अथवा आठ प्रकार के आलिङ्गन, यों सर्व प्रकारों से श्रीकृष्ण ने स्त्रियों के अन्तःकरणों को हर लिए। 'किल' पद देने का भावार्थ है कि पूर्ववत् प्रसिद्धि है। ये सब क्रीड़ाएँ प्रपञ्च की विस्मृति में साधन बनी, न कि प्रपञ्च में भाव की साधक हुईं ॥१३॥

आभास—अस्मिन्नर्थे प्रमाणत्वेन तासां वाक्यानि निरूपयितुमाह **ऊचुर्मुकुन्दैकधिय** इति ।

आभासार्थ—इस विषय में स्त्रियों के वचन प्रमाण हैं, यों बताने के लिए 'ऊचुर्मुकुन्दैकधियो' श्लोक कहते हैं—

श्लोक **ऊचुर्मुकुन्दैकधियो गिर उन्मत्तवज्जडम् ।**
चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥१४॥

श्लोकार्थ—मुकुन्द भगवान् में ही आश्रित बुद्धि वाली वे स्त्रियाँ कमलनयन वाले का ही चिन्तन करती हुई, उन्मत्त और जड़ के समान जो वचन बोली, वे वचन मैं कह रहा हूँ; आप सुनिए ॥१४॥

सुबोधिनी—प्रपञ्चं विस्मृत्य काममपि विस्मृत्य मुकुन्दे मोक्षदातर्येव एका धीर्यासां, तादृश्यो भूत्वा गिर ऊचुः यथा स्वहृदयख्यापिकाः। तर्हि ब्रह्मविदामिव तासां वाक्यानि भवन्तीत्याशङ्कयाह उन्मत्तवदिति। असंबद्धानि वाक्यानि। उन्मत्तो गन्धर्वगृहीतः तथा भगवद्गृहीताः। न तु लौकिकाः स्वस्थाः तत्रापि जड यथा भवति। अचेतनादिषु चेतनधर्मारोपात्। ननु केवलप्रपञ्चविस्मृतिः जगति जडवन्निन्दाहेतुरत आह चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्षमिति। अनेन पूर्णो हेतुः सिद्ध इत्युक्तं भवति। तानि निरोधार्थं गदतः कथयतो मे मत्तः शृणु। कदाचित्प्राकृतत्वशङ्का स्यात् तदर्थं सर्वथा श्रोतव्यमित्यर्थः ॥१४॥

व्याख्यार्थ—प्रपञ्च और काम को भुलाकर मोक्षदाता मुकुन्द में स्थिर बुद्धि वाली वे स्त्रियाँ अपने हृदय के भाव वाणी द्वारा प्रकट करने लगीं, तब तो ब्रह्मवेत्ताओं के समान इनके वचन सत्य होंगे ? इस शङ्का के निवारण के लिए कहते हैं कि उन्मत्तवत्' इनके वचन उन्मत्त (मस्त) की तरह असम्बद्ध (टूटे-फूटे) हैं जैसे उन्मत्त गन्धर्व के आवेश वाला होता है, वैसे ये स्त्रियाँ भगवान् के आवेश वाली थीं। अतः ये स्त्रियाँ लौकिक स्वस्थ नहीं थीं, उसमें भी जैसे जड़ होता है, वैसे ये हो गई थीं कारण कि अचेतन आदि में चेतन धर्म का आरोप करने से वह वाणी जड़ समान थी, केवल प्रपञ्च का विस्मरण जड़ धर्म है। अतः इस प्रपञ्च विस्मरण मात्र से जगत् में निन्दा होती है। इस संशय का निवारण करने के लिए कहते हैं कि इन स्त्रियों को केवल प्रपञ्च विस्मृति नहीं हुई थी, किन्तु साथ में कमलनयन प्रभु का चिन्तन भी हो रहा था। इससे यह सिद्ध कर बताया कि उनका मनोरथ भी पूर्ण तरह सिद्ध हो गया था।

इस चरित्र से निरोध सिद्ध होगा, इसलिए वह सर्व मैं कह रहा हूँ, जिसको मुझसे सुनो। कदाचित् यह शङ्का होवे कि वह वाणी प्राकृत थी। इस संशय को मिटाने के लिए ही कहा है कि वह सर्वथा सुननी चाहिए; क्योंकि वह अप्राकृत है ॥१४॥

आभास—ता गिर आह दशभिः **कुररीति**।

आभासार्थ—'कुररि विलपसि' श्लोक से दस श्लोकों में वे वाक्य कहती हैं—

श्लोक महिष्य ऊचुः—**कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे**
स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरोऽगुप्तबोधः।
वयमिव सखि कच्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता
नलिननयनहासोदारलीलेक्षणेन ॥१५॥

श्लोकार्थ स्त्रियाँ कहती हैं कि हे टिटिहरी ! तूँ क्यों नहीं सोती है ? केवल विलाप कर रही है, जिससे जिस परमेश्वर का ज्ञान कभी भी तिरोहित नहीं होता है, वे तो जगत् में रात्रि के समय सो रहे हैं; तूँ विलाप कर उनकी निद्रा में भंग डाल रही है। हे सखी ! हमारे समान तुम्हारा चित्त भी कमलनयन भगवान् के उदार हास्य और लीलापूर्वक ईक्षण से घायल हो गया है क्या ? ॥१५॥

कारिका—कुररि चक्रवाकोऽब्धिश्चन्द्रमा मलयानिलः ।
मेघकोकिलकेल्यद्रितन्नद्यो हंस एव च ।।
दशधा भगवत्स्नेहैरुक्ताः स्त्रीभिः स्वभावतः ।
मनसैव तिरोधानमुक्त्यैवोक्तं न पूर्ववत् ।।
वाचिकेऽपि तिरोधानं वाक्यैरेव निरूपितम् ।
विद्यमानेऽतिसम्भोगसौख्यदेऽपि विशेषतः ।।
तत्सङ्गलालसाः प्रोक्ता दृढासक्तिप्रसिद्धये ।
आसक्तिर्गृहकार्यादिनिद्रादिविनिवृत्तये ।।
स्वधर्मान् स्वप्रियं चापि कल्पयित्वाखिलेषु हि ।
बहिस्तत्त्वं निरीक्ष्यैवं प्रलपन्त्यस्तथा जगुः ।।

कारिकार्थ–(१) टिटिहरी, (२) चक्रवाक, (३ समुद्र, (४) चन्द्रमा, (५) मलय का पवन, (६) मेघ, (७) कोयल, (८) केलि करने का पर्वत स्थान, (९) पर्वतों की नदियाँ और (१० हँस—इन दस का वर्णन स्त्रियों ने यह दिखलाने के लिए किया है कि नव सगुण और एक निर्गुण भेद से भगवान् के भीतर के स्नेह रूप साधन दस प्रकार के ही हैं। इन वाक्यों से यह बताया है कि इस लीला में भगवान् पहले की तरह स्वरूप से तिरोहित नहीं हुए हैं, किन्तु मन से तिरोहित हो गए है।

वाक्यों से ही वाचिक तिरोधान भी बता दिया है। प्रत्यक्ष में तो स्वरूप से सम्भोग का अति आनन्द प्राप्त हो रहा है तथापि प्रभु के सङ्गम की लालसा को प्रकट करने का हेतु अपनी दृढ़ आसक्ति की प्रसिद्धि का द्योतक है।

अन्य में आसक्ति अर्थात् भगवान् के अतिरिक्त गृह कार्य आदि तथा निद्रा आदि में जो आसक्ति है, उस आसक्ति की निवृत्ति करने के लिए भगवद्वियोग के कारण जो विलाप आदि अपने में जो गुण थे, उनकी और अपने प्रिय की सर्व पदार्थों में कल्पना कर और बाहर भी उनका स्वाभाविक विलापादि धर्मपन देखकर, प्रलाप वाली होकर वैसा गान करने लगो।।

सुबोधिनी—प्रथमं स्वाभिलषितलीलानन्तरं भगवति शयनलीलायामारब्धायां बहिः स्वाभाविकं कुररीविलापं श्रुत्वा राजसराजसभावापन्नाः महिष्यः कुररीविलापेन भगवत्प्रबोधमाशङ्कमानाः स्वकामलीलां परित्यज्य भगवति परमस्नेहेन निद्राभङ्गो मा भवत्विति कुररीनिवारणार्थं प्रवृत्ता दुःखितां कुररीं दृष्ट्वा आश्वासनार्थं सम्बोधनं कुर्वन्त्य ऊचुः हे कुररीति। भगवद्व्यतिरिक्तं सर्वं जगत् स्त्रीरूपमेवेति ताः पश्यन्ति। अत एव सर्वासां भगवानेवैकः पतिरिति। अतो या काचिद्दुःखं प्राप्नोति तत्र भगवद्विरह एव हेतुः। अन्यद्दुःखं भगवतैव दूरीक्रियत इति। अत इयमपि स्त्री भगवद्विरहाकुला भगवता सम्भोगार्थमानीय कटाक्षविशिखैर्हता। अतो विलापं करोतीति निश्चित्य तां प्रत्याहुः हे कुररि अस्माभिर्ज्ञातं त्व कोलाहलं करोषि तदयुक्तमिति

निवारयितुमागताः, त्वं किं विलपसि हा कष्टमित्यर्थः । विलापो निवारयितुं न शक्यते । कारण दुःखस्य सञ्जन्यमानत्वाद् वेदनावदिति भावः । निद्राभावशयनाभावौ स्वतुल्यतया अनुवदन्ति । त्वं किं वीतनिद्रा नापि शयनमपि करोषि । निद्राभावेऽपि काश्चित् पतित्वा तिष्ठन्ति तदपि तव नास्तीत्यर्थः ॥

व्याख्यार्थ—अपनी अभिलषित लीला के अनन्तर जब भगवान् शयन लीला करने लगे, तब उन्होंने बाहर से टिटिहरी का स्वाभाविक विलाप सुना, जिससे राजस-राजस भाव वाली महिषियों (रानियों को शङ्का हुई कि इस विलाप से भगवान् की निद्रा का भङ्ग होगा । महारानियों का भगवान् में अतिशय स्नेह था, जिससे वे चाहती थीं कि भगवान् की निद्रा का भङ्ग न हो, यों तो यदि भगवान् जगते तो महारानियों को काम लीला का सुख प्राप्त होता । किन्तु उस अपने सुख का भी त्याग कर अपने प्रिय का सुख ही चाहने लगीं—यह है सच्चे स्नेह का स्वरूप; जिससे अपने को भले सुख न मिले, किन्तु प्रेमी आनन्द में रहे । इस आशय से उन्होंने टिटिहरी को इस प्रकार विलाप करने से रोकी एवं टिटिहरी को दुःखी देख समझ, उसको आश्वासन देने के लिए सम्बोधन करती हुई कहने लगीं कि हे टिटिहरी ! वे महिषियाँ भगवान् के अतिरिक्त सकल जगत् स्त्री रूप है, यों देखती हैं । इस कारण से वे समझती थीं कि जैसे हमारा पति भगवान् है, वैसे सर्व के पति एक भगवान् ही हैं; क्योंकि उनके अलावा कोई दूसरा पुरुष ही नहीं है । अतः जो कोई भी जगत् में दुःख पाता है, जिसका कारण भगवान् का विरह ही है, इसके अलावा अन्य दुःख तो भगवान् ही दूर करते हैं ही । अतः यह भी स्त्री है और भगवान् के विरह से व्याकुल है । भगवान् ने इसको भी सम्भोग के लिए लाकर अपने कटाक्ष रूप बाणों से घायल किया है । इसलिए यह विलाप कर रही है, यों निश्चय कर उसको कहने लगी कि हे टिटिहरी ! हम लोगों ने जाना कि तू विलाप कर रही है, यह अनुचित है, तू विलाप न कर । इसलिए (तुम्हें रोकने के लिए) हम आई हैं, तू क्यों विलाप करती है ? यह बहुत दुःख की बात है कि यह विलाप मिटाया नहीं जा सकता है; क्योंकि इस विलाप का कारण दुःख है, वह तो वेदना की तरह उत्पन्न होता ही रहता है । अतः वेदना की तरह इसको भी हम मिटा नहीं सकती हैं—यह भाव है । जैसे हमको नींद नहीं आती है, हम जग रही है, वैसे तू भी नींद न आने से सोती नहीं है । नींद न आने पर भी कितनी ही स्त्रियाँ शय्या से नीचे पड़ी रहती हैं, तू तो यों भी नहीं करती है ॥

कारिका—यदा देहेऽतिचिन्ता स्यात् धातुवैषम्यमेव वा ।
भयादिना विशेषेण तदा निद्रा न जायते ॥

कारिकार्थ—जब अतिशय चिन्ता होती है, तो देह में जो धातु (कफ, पित्त, वायु) हैं; इनमें वैषम्य (कमी-वेशी) होती है और विशेषकर भय आदि से नींद नहीं आती है ॥

सुबोधिनी—भगवान् दुराराध्यः कथं वश्यो भविष्यतीति महती चिन्ता ॥

व्याख्यार्थ—भगवान् दुराराध्य हैं, वे कैसे वश में आएँगे ? यह महती चिन्ता है, जिससे निद्रा नहीं आती है ॥

कारिका —यदाङ्गेषु समस्तेषु तापोऽनिर्वृत्तिरेव वा ।
तदैकत्र जनः स्थातुं न शक्नोति कथञ्चन ॥

कारिकार्थ—जब समस्त अङ्गों में पीड़ा हो अथवा चित्त में क्षोभ हो अर्थात् शान्ति न हो, तब मनुष्य किसी भी तरह एक स्थान पर स्थिति करने में असमर्थ होता है ।

सुबोधिनी—तापश्च विरहात् । एतावपि स्वधर्मौ तर्हि अस्मद्दुःखं भगवते निवेदयन्त्विति चेत् तत्राहुः **स्वपितीति** । अयं च स्वापः विहितकाले, तस्मादावश्यकत्वान्न निषेद्धुं शक्यः । तदाह **रात्र्यामिति** । ननु भगवान् गतनिद्रः परब्रह्मरूपः कथं निद्रां प्राप्नोतीति चेत् तत्राहुः **जगतीति** । सर्वत्र जगति भगवानेव शेते । नह्यन्यो निद्रासुखभोक्ता भवति । सर्वेषां प्राणिनां सुखार्थं वा । जगति जगन्निमित्तं निद्रां विस्तारयतीत्यर्थः । तर्हि तन्निद्रया लोकार्थं स्वीकृतया स्वात्मापि मुह्येदत आह **अगुप्तबोध** इति । निद्रायामपि न गुप्तो बोधो यस्य । तर्हि कथं नज्ञायत इत्याशङ्कायामाहुः **ईश्वर** इति । ईश्वरो लीलयापि सुप्तो बोधयितुमशक्यः तस्मादस्माभिः सहेष्टगोष्ठ्या दुःखं दूरीकुर्वित्याहुः **वयमिवेति** । **हे सखि** तुल्यव्यसने । **कच्चिदिति** कोमलप्रश्ने । **गाढनिर्भिन्नचेता** इति दुःखानुसारेण हेतुं महान्तं कल्पयन्ति । पीडा कामकृतैवेति । कामः पुष्पायुध इति भगवन्नेत्रमपि नलिनरूपमुच्यते । नन्वविकसितं पुष्पं किं करिष्यतीत्याशङ्क्याह नलिनसदृशे नयने यो **हास**सहित इति । ननु हृदये वेधव्यतिरेकेण पीडा न भवतीत्याशङ्क्याह **ईक्षणेने**ति । ईक्षणं तीक्ष्णबाणस्थानीयम् । ननु तथापि दयया न मारयिष्यतीति चेत् तत्राह **उदारेति** । उत् ऊर्ध्वं आरा यस्य, उद्गता वा दाराः अतः स्वयं पीडितः अन्यानपि पीडयिष्यति । किञ्च लीलायुक्तं निरीक्षणम् । क्रीडायामासक्तो न कस्यापि सुखं विचारयति । अतस्तेन गाढं यथा भवति तथा निर्भिन्नम् ॥

व्याख्यार्थ दुःख विरह से होता है, ये दोनों (नींद और शयन का अभाव अपने धर्म हैं । अतः यह मेरा दुःख भगवान् को कहना । यदि टिटिहरी यों कहे, इसलिए पहले ही कह देती हैं कि 'स्वपिति'—भगवान् पोढे हैं । यदि कहो कि भगवान् परब्रह्म को तो नींद नहीं होती है, वे कैसे सो रहे हैं ? इस पर कहती हैं कि यह शयन (सोना) सोने के समय में आवश्यक है, इसलिए हम उसका निषेध नहीं कर सकती हैं । अतः 'रात्र्यां' पद दिया है अर्थात् रात्रि को अवश्य सोना चाहिए तथा 'जगति' पद देकर भी यह बताया है कि जगत् में सर्वत्र भगवान् ही शयन करते हैं, भगवान् के अलावा दूसरा कोई निद्रा के सुख का भोक्ता नहीं है अथवा भगवान् जो शयन करते हैं, वह समस्त प्राणियों को सुख देने के लिए जगत् में जगत् के लिए निद्रा का विस्तार करते हैं ।

लोगों के हितार्थ स्वीकृत उस निद्रा से आपको भी मोह होगा ? इसके उत्तर में कहती हैं कि नहीं; क्योंकि आपका ज्ञान कभी भी तिरोहित नहीं होता है, निद्रा में भी आपका ज्ञान प्रबुद्ध ही रहता है, तो मेरा दुःख आप उनको क्यों नहीं बता देती हो ? जिसके उत्तर में कहती हैं कि 'ईश्वरः'—वे ईश्वर है । अतः ईश्वर लीला से भी जब सोए रहते हैं, उस समय भी उनको हम कह नहीं सकती हैं । अतः तू हमारे साथ प्रीतम की प्रेम कहानियाँ कहकर अपने दुःख को दूर करदे । इसलिए कहा है कि 'वयमिव'—जैसे हम आपस में प्रीतम की लीलाओं को कहकर दुःख मिटाती हैं, वैसे तू भी कर । 'हे सखि' सम्बोधन से यह सूचित किया है कि जैसा दुःख हमको है, वैसा तुम्हें

भी; इसलिए हम दोनों समान व्यसन वाली होने से सखियाँ हैं। 'कच्चित्' पद से यह बताया है कि जो प्रश्न करना है, वह कोमलता से किया है। 'अत्यन्त घायल चित्त वाली'—इस पद से दुःख के साथ महान् हेतु की कल्पना की है; क्योंकि पीड़ा काम के कारण ही होती है। काम का आयुध पुष्प है, भगवान् के नेत्र भी पुष्प रूप कहे जाते हैं, जो पुष्प खिला हुआ नहीं है, वह क्या कर सकेगा? इसके उत्तर में कहा है कि जिनके कमल समान नेत्रों में हास्य भरा हुआ है, हास्य कहने से उनका विकास सिद्ध किया है। जब तक हृदय बींधा नहीं जाता, तब तक पीड़ा नहीं होती है। इस पर कहा कि 'ईक्षणेन'—दृष्टि से बींध डाला है। आपका ईक्षण (दृष्टि) तो तीखे बाण के समान है, यों होते हुए भी दयालु हैं, इसलिए दया करके मारेंगे नहीं? इसका उत्तर देती हैं कि 'उदार'—आपके ईक्षण रूप धनुष के आरे ऊँचे हैं अथवा जिनकी स्त्रियाँ बलवती तथा कटाक्षों से पीड़ा करने वाली हैं; ऐसे आप उदार हैं। इससे स्वयं पीड़ित होते हुए दूसरों को भी पीड़ा देंगे और विशेष में कहती हैं कि आपका देखना लीला से युक्त है। जो क्रीड़ा में आसक्त है, वह किसी के भी सुख का विचार नहीं करता है, इससे जैसे अत्यन्त घायल हो, वैसा ही घायल किया है।

कारिका - ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्भक्तियोगस्तथैव च।
मायावैभवकालौ च सतां हितकरौ तथा ॥
पञ्चैते हरिसम्बद्धा यस्यान्तर्हृदये सदा।
विराजन्ते स्वभक्तेषु भक्तोऽनिर्वृत उच्यते ॥

कारिकार्थ - ज्ञान शक्ति, क्रिया शक्ति वैसे ही भक्ति योग, वैसे ही सत्पुरुषों के हितेच्छु माया तथा वैभव के काल; ये पाँच हरि के सम्बन्धी होकर जिसके हृदय में सदा विराजते हैं, वह भक्त भक्तों में निर्वृत्त नहीं कहा जाता है ॥

सुबोधिनी—एवं तस्या दुःखमनुवादेन अङ्गीकृतम्। १५॥

व्याख्यार्थ—इस प्रकार उसका दुःख अनुवाद रूप से अङ्गीकार किया है ॥१५॥

आभास—अन्याः पुनः राजससात्त्विक्यः चक्रवाकं पूर्ववन्निवारयितुं प्रवृत्ता आहुः नेत्रेऽनिमीलयसीति।

आभासार्थ—फिर दूसरी राजस-सात्त्विकियाँ जैसे टिटिहरी को पहले उन्होंने विलाप करने से रोका था, वैसे ये भी चक्रवाक को रोकने के लिए प्रवृत्त हुई हैं, जिसका वर्णन 'नेत्रेऽनिमीलयसि' श्लोक में कहते हैं—

श्लोक—नेत्रेऽनिमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धुस्त्वं
रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि।
दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां
किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥१६॥

श्लोकार्थ - हे चकवी ! क्या तू अपने प्रिय का रात्रि में दर्शन न होने से नेत्र खोल रही है ? और दुःख है कि तू इस प्रकार क्रन्दन कर रही है, जिसके सुनने से दिल में दया उत्पन्न हो रही है अथवा तू भी हमारे समान दासी होने से भगवान् के चरणों से स्पृष्ट माला को केशपाश में रखना चाहती हैं क्या ? ॥१६॥

सुबोधिनी – तासामवयवविशेषे खेलनार्थं चक्रवाकौ स्थापिताविति मत्वा तौ द्रष्टुं काचिच्चक्रवाकी समागता । ततस्तां निकटे दृष्ट्वा सापि रोदितीति विचार्य तस्या अपि दुःख दूरीकर्तुं क्लेशमनुवदन्ति । निद्राभावेऽपि कश्चिन्नेत्रे निमील्य तिष्ठति । त्वं तु तदपि न करोषीति । किमनिमीलयसीति प्रश्नः । नक्तमिति निमीलनस्यैवायं काल इति निरूपितम् । स्वास्थ्ये सति निमीलयति प्राणी । त्वं चादृष्टबन्धुः मम भर्ता क्व वर्तत इति तं द्रष्टुं न निमीलनं करोषि । अत एव त्वं रोरवीषि अत्यन्त शब्दं करोषि । करुणं यथा भवति तथा । बतेति खेदे । तत्रेदानीं द्वितीयमपि तथैवागतं चक्रवाकमुपलभ्य प्रायेणेयं भक्ता, भर्ता त्वस्या वर्तत एवेति इयं भगवतो दासी भवति । ततो दिनान्तसेवां कृत्वा यथा वयं दास्यो जाताः तथेयमपि सेवाफलं वाञ्छति तच्च फलं प्रसादरूपं, प्रसादश्च स्वचरणसमर्पितमालां चेत्प्रयच्छति तदा भगवान् सेवां स्वीकृतवानिति निश्चित्य तां भक्तिरूपां मालां शिरसि स्थापयित्वा कृतार्थतामापद्यते । इयं च तन्न प्राप्नवती । अतस्तत्कामनया खेदं करोतीत्याहुः वयमिव, अच्युतपादजुष्टां स्रजं कबरेण वोढुमिच्छसि । कबरादयः स्त्रधर्माः ॥१६॥

व्याख्यार्थ—उन महिषियों ने मान लिया कि हमारे विशेष अवयवों के पास रमण के लिए दो चकवे रखे हुए हैं, उनको देखने के लिए कोई चकवी आई है. पश्चात् उसको अपने समीप आई हुई जानकर, वह भी रो रही है, यों विचार कर उसके दुःख को भी दूर करने के लिए, उसके दुःख का वर्णन करती हैं, नींद न आती हो तो भी कोई नेत्र बन्द कर ही बैठता है तू तो वह भी नहीं करती है, अर्थात् आंखों को मूंदती भी नहीं यह क्यों ? 'नक्तं' रात्रि का समय तो नींद का ही है, नींद न आवे तो भी नेत्र तो मूंद लेने ही चाहिए प्राणी जब स्वस्थ अर्थात् निश्चिन्त होता है तब नींद ले सकता है अथवा आंखें मूंद आराम करता है हम समझती हैं कि तू निश्चिन्त नहीं है क्योंकि, भर्ता को ढूंढ रही है मेरा भर्ता कहां है, अतः नेत्र खोल कर बैठी है, इस कारण से ही तू जोर से शब्द कर रही है अर्थात् रो रही है, वह तेरा रोदन भी ऐसा है जिसको सुनकर दया आ जाती है, अतः खेद है. उस समय वहां दूसरा चकवा भी आ गया, जिससे सिद्ध होने लगा कि इसका पति तो यहां ही है, फिर वह रोती क्यों है ? जिसके उत्तर में कहती है कि यह साधारण पति विहीना स्त्री नहीं है, किन्तु भगवद्भक्ता है अतः भगवान् की दासी है जैसे हम दासियां ही सारे दिन की सेवा कर फिर फल प्राप्ति की इच्छा करती है वैसे ही यह भी सेवा के अवसान में फल इच्छा कर रही हैं, वह फल भगवान् की प्रसाद रूप वस्तु की प्राप्ति, वह प्रसाद रूप वस्तु है, आपके चरण में समर्पित की हुई माला यदि वह भगवान् कृपा कर देवे तो हम समझेंगी भगवान् ने हमारी सेवा स्वीकार की है यों समझ वह माला अपने केशपाश में पधराकर कृतार्थता सम्पादन करेंगी, इसको तो वह नहीं मिली है अतः उसकी प्राप्ति के लिए खेद कर रही है, इसलिए कहती है कि क्या तू भी चरण स्पृष्ट माला प्राप्त कर केशपाश में पधराना चाहती है ? केशपाश आदि बनाने हम स्त्रियों के धर्म हैं ॥१६॥

आभास—राजसतामस्यस्तु समुद्रध्वनिं श्रुत्वा तमपि पूर्ववत्सम्बोधयन्ति भो भो इति।

आभासार्थ—'भो भो सदा' श्लोक से राजस तामसी महिषियां समुद्र की ध्वनि सुनकर उसको भी पहिले की तरह समझाती हैं—

श्लोक—भो भो सदा निष्टनसे उदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः।
किंवा मुकुन्दापहृतात्मलाञ्छनः प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम्।१७।

श्लोकार्थ—अरे रे समुद्र ! तुम्हें भी नींद नहीं आती है, जिससे तू जग रहा है और सदा चिल्लाया करता है अथवा क्या तुमने भी हमारे समान दुरत्यय दशा को प्राप्त किया है ? जैसे हमारे चिन्ह भगवान् ने हर लिए हैं, वैसे तुम्हारे भी चिन्ह मुकुन्द ने हर लिए हैं क्या ? ॥१७॥

सुबोधिनी—द्विरुक्तिः श्रवणार्थं, त्वं यत्सदा निष्टनसे। स्तन शब्दे नितरां शब्दं करोषि। तेन ज्ञायते रात्रौ त्वमपि न शेषे। तत्र शयनाभावे हेतुः हे उदन्वन्निति। यस्तु जलवान् भवति स शीतार्तो भवति। अत एव अलब्धनिद्रः न कुतश्चित्तेन निद्रा प्राप्ता प्रत्युत प्रकृष्ट जागर एव प्राप्तः। यत्र हि जलं तिष्ठति तत्र लक्ष्म्याः उत्तमं रमणं न भवतीति इन्द्रश्चेन्द्राणी च नान्तस्तत्र भोगं कुरुतः अतस्तादर्थ्याभावात् प्रजागर एव प्राप्तः, न तु निद्रा तेन प्राप्ता। ननु तथाप्याक्रोशे को हेतुः तत्राहुः किंवा मुकुन्देति। पूर्वं यथा भगवानस्मद्धृदये शेते, एवं समुद्रेऽपि शेषपर्यङ्के शयानः स्थितः, तत इदानीमत्रावतीर्णस्तिष्ठति तथैवास्मद्धृदयाच्च तिरोहितः। अत एव सर्वस्वे गते आक्रोशो युक्त एव। मुकुन्देन मोक्षदात्रा अपहृतं आत्मन इव लाञ्छनं चिह्नं यस्य। अतो मोक्षोऽपि नास्ति। संसारोऽपि नास्ति। अत उभयभ्रष्टतया अस्माभिर्या दशा प्राप्ता तां दशां त्वमपि गतोऽसि। एवं दुःखमनूद्य 'न दुःखं पञ्चभिः सह' इति न्यायेन परिहृतम्। प्रकारान्तरेणापि परिहरन्ति दुरत्ययामिति। इयं दशा अस्माकमिव तवापि नित्यैव जाता। अतोऽस्याः प्रतीकाराभावात् दुःखं न कर्तव्यमिति भावः। ॥१७॥

व्याख्यार्थ—'भो भो' दो बार कहने का आशय है कि जो हम कहती हैं वह समुद्र सुने, तुम जो सदा जोर से गर्जते[1] रहते हो जिससे जाना जाता है कि, तुम भी रात्रि में सोते नहीं हो, न सोने का कारण है कि तूं 'उदन्वत्' है, अर्थात् जलवाला है, जो जलवाला (आर्द्र) होता है वह शीत (ठंड) से पीड़ित होता है, इस कारण से ही उसको कैसे भी नींद तो नहीं आती बल्कि, जागरण ही प्राप्त होता है, जहां जल होता है वहां लक्ष्मी का रमण सुन्दर नहीं हो सकता है, इसलिए वहां

———

१- 'स्तन' का अर्थ सदा शब्द करते रहना है, 'नि' पूर्व में आने से जोर से शब्द करना अर्थात् गर्जना करना हुआ,

(उसके भीतर) इन्द्र और इन्द्राणी भोग नहीं करते हैं, जिससे निद्रा के कारण[1] का अभाव होने से जागना ही प्राप्त होता है, नींद आती ही नहीं ।

नींद भले न आवे किन्तु आक्रोश[2] की क्या आश्यकता है ? इस पर कहते हैं कि 'किं वा मुकुन्दा . . . . इति' पहले जैसे हमारे हृदय में भगवान् शयन (लोला स्थिति) करते थे, वैसे समुद्र में भी शेष रूप पलङ्ग पर सो रहे थे (लोला कर रहे थे वहां से (शेष शय्या से अब यहां आकर विराजे हैं, इसी प्रकार हमारे हृदय से भी तिरोहित हो गए हैं, इस कारण से, सर्वस्व चले जाने पर आक्रोश करना उचित ही है, जैसे पटराणियों के चिन्ह[3] मोक्षदाता भगवान् ने हरलिए हैं वैसे समुद्र के भी ले लिए हैं जिससे संसार न रहा और भगवान् के तिरोधान से मोक्ष भी न हुआ, दोनों ने भ्रष्ट होकर जैसे हमने दुरत्यय दशा को पाया है वैसा तुमने भी पाया है ।

इस प्रकार दुःख का वर्णन कर, कहने लगी कि 'पांचों' के साथ रहने से दुःख दूर हो जाता है' इस नियमानुसार हमने मिलकर रहने से उस दुःख को दूर किया है तूं भी यों कर इस दुःख को मिटाने का दूसरा उपाय बताती है कि यह दुःख दुरत्यय होने से इसके मिटाने का कोई अन्य उपाय नहीं है अतः इस दुःख पर ध्यान ही न देना चाहिए, यह ही एक उपाय है ।।१७।।

आभास—तामसतामस्यस्तु कालं शपन्त्यः रात्रिश्चेदपगच्छति तदास्माकं दुःख-निवृत्तिरिति निश्चित्य चन्द्रास्तमये प्रातःकालो भवतीति चन्द्रस्य गतौ दत्तदृष्टयः ज्योतिषां गतिरदृश्येति शनैश्चलति न चलतीति वा निश्चित्य अतिकामेन अन्धा इव जाताः । सर्वं तमसा व्याप्तं पश्यन्त्य आहुः **त्वं यक्ष्मणेति** ।

आभासार्थ—तामस-तामसी महिषियाँ तो, काल को शाप देती थी, कि तूने हमारे सुख में विघ्न डाला है आदि मन में कहती थी कि रात्रि पूरी हो तो हमारा दुःख निवृत हो जावे यों निश्चय कर चन्द्र को देख रही थी कि कब चन्द्र अस्त होता है, तारों की गति का ज्ञान होता नहीं, शेष चन्द्रमा धीरे धीरे ऐसे चलता है मानो चलता ही नहीं है ऐसी शङ्का उत्पन्न हो जाती है, इस प्रकार मन में निश्चय कर अति काम के कारण अन्ध सम हो गई, सब को अन्धकार से व्याप्त देखने लगी, जिसका वर्णन 'त्वं यक्ष्मणा' श्लोक में करती है —

श्लोक—त्वं यक्ष्मणा बलवताऽसि गृहीत इन्दो
क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि ।
कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं
विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ।।१८।।

१– (अ) दक्षिण नेत्र में इन्द्र, वाम नेत्र में इन्द्राणी आकर नींद के समय में भोग करते हैं, इसलिए ही नींद आती है, (आ) नींद का कारण है इन्द्र और इन्द्राणी का भोग, उसके न होने से नींद नहीं आती है 'लेख'

२– जोर से चिल्लाना, ३– देह, इन्द्रियां, प्राण और अन्तःकरण

श्लोकार्थ – हे चन्द्र ! क्या तू प्रबल क्षय रोग से ग्रस्त होने से क्षीण हो गया है? जिससे अपनी किरणों से अन्धकार को नहीं मिटा सकता है अथवा हम तो यों समझती हैं कि भगवान् की रहस्यमय वाणी को भूल जाने से तुम्हारी वाणी भी हमारे समान बन्द हो गई है ॥१८॥

सुबोधिनी—यक्ष्मा क्षयरोगः, सोऽपि बलवान् दक्षशापात् प्राप्त इति, अत एव तेन गृहीतः अतो न चलसीति युक्तम् । इदं त्वत्याश्चर्यं यन् न निजदीधितिभिस्तमः क्षिणोषि । अत्रास्मदनुभव एव प्रमाणम् । एवं चन्द्रमसि दोषमनूद्य प्रायेणास्यायं दोषः न स्वाभाविक इति निश्चित्योभयत्र हेतुं कल्पयन्ति कश्चिदिति । मुकुन्दो मोक्षोपदेशार्थं कानिचिद्वाक्यान्युक्तवान् तानि दुर्लभानि मत्वा विस्मृत्य पश्चात्परमचिन्तया स्थगितगीर्जातः । मुखाद्वाक्यमपि न निःसरति । चन्द्रमसो वाक्यमेव गोत्वात्किरणरूपम्, इन्द्रियरूपत्वेन चरणरूपत्वं च । तदभावादुभयमपि तव न जायते । शीघ्रं गमनमन्धकारदूरीकरणं च । भो इति सम्बोधनं प्रश्नार्थे अस्माभिरुच्यमानमेवं भवति न वेति । भवतीभिः कथं ज्ञायत इति चेत् तत्राहुः एवं नोऽस्माभिरुपलक्ष्यसे इति ॥१८॥

व्याख्यार्थ—'यक्ष्मा' पद का अर्थ है क्षय रोग' वह भी दक्ष के शाप से तुमको बलवान हुआ है, उस रोग से ग्रसित होने से तू चल नहीं सकता है, यह तो उचित ही है किन्तु यह तो अत्यन्त आश्चर्य है कि अपनी किरणों से अन्धकार नाश नहीं करती है, इस विषय में हम लोगों का अनुभव ही प्रमाण है, इसी तरह चन्द्रमा के दोष का वर्णन कर कहने लगी कि बहुत कर इसका यह दोष स्वाभाविक नहीं है, यों निश्चय कर चन्द्र शीघ्र नहीं चलता है और अन्धकार को नाश नहीं करता है, इन दोनों के कारणों की कल्पना करती है, मुकुन्द भगवान् ने मोक्षार्थ कितने उपदेश वचन कहे, उनको दुर्लभ समझ भुला दिया, अनन्तर उस भूल जाने की तुमको बहुत चिन्ता हुई जिससे तेरी वाणी बन्द हो गई है. मुख से वाक्य भी नहीं निकलता है, 'गो' शब्द का अर्थ वाणी और किरण आदि होता है अतः 'गो' शब्द से चन्द्रमा का वाक्य 'गो होने से किरण रूप है, और इन्द्रिय रूप होने से चरण रूप है, इससे तुम वाणी के रुक जाने से बोल नहीं सकते हो, चरणरूप होने से वह भी रुके हुए हैं जिससे जल्दी चल नहीं सकते हो एवं अन्धकार मिटा नहीं सकते हो, भो ! संबोधन प्रश्न रूप में है, हम जो कहती हैं वह यों है वा नहीं ? तुम कैसे जानती हो ? इस पर कहती हैं कि इस प्रकार हमको तू भास रहा है ॥१८।

आभास—तामसराजस्यः कामेन पीडिता मलयानिलं शपन्त्य आहुः किं वाचरितमस्माभिरिति ।

आभासार्थ—तामस-राजसी महिषियों काम से पीड़ित होने से 'किं वाचरितमस्माभिः' श्लोक से मलय के वायु को कोसती है—

श्लोक—किं वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ।
गोविन्दापाङ्गनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥१९॥

श्लोकार्थ—हे मलयाचल के वायु ! हमने तुम्हारा क्या बुरा किया है ? जिससे तूँ भगवान् के कटाक्ष से भिन्न हुए हमारे हृदय में काम की प्रेरणा करता है ।।१६।।

सुबोधिनी—हे मलयानिल ते तुभ्यमस्माभिः किं वा अप्रियमाचरितम् । मलयानिलस्य शीतलस्य अप्रियमुष्णत्वापादकं, यदा भगवता सह स्थितं तदा स्वहृदयचन्दनादिभिः त्वमस्माभिरतिशीतलः कृतः । एवमुपकारिषु कथं त्वमपकारं करोषि । को वा अपकारः कृत इति चेत् तत्राहुः गोविन्दस्य अपाङ्गेनैव स्मृतेन निर्भिन्ने हृदये स्मरं प्रेरयसि । यथा कश्चित्कोटरे अग्निं प्रयच्छति येन सर्वोऽपि वृक्ष आर्द्रोऽपि दग्धो भवेत्, तथा त्वमस्मान् करोषीत्यर्थः । गोविन्दपदेन गोकुलगतस्य भगवतो लीला स्मृता । अत एव महद्दुःखं जातमिति सूचितम् । अथ यदि सांप्रतं वयं तप्ता इति तव रोषस्तथापि मलयानिलः सर्पादिभिर्ग्रस्तः समायाति । तादृशस्य केनापकारः कर्तव्य इति सूचितम् ।।१६।।

व्याख्यार्थ—हे मलय के पवन हमने तुम्हारा कौनसा अप्रिय किया है ? अर्थात् क्या बिगाड़ा है ? मलयानिल का अप्रिय है उसको उष्णता देना, वह तो हमने किया नहीं, बल्कि हम जब भगवान् के साथ थीं तब अपने हृदय के चन्दनादि शीतल पदार्थों से तुमको विशेष शीतल बनाया, इस प्रकार उपकार करने वालियों पर तूं अपकार (बुरा) कैसे करता है ? यदि कहो कि हमने कौनसा अपकार किया ? इस पर कहती है कि गोविन्द के अपाङ्ग कटाक्षों) के स्मरण होने से घायल हृदय में काम को प्रेरते हो, जैसे कोई वृक्ष के कोटर में अग्नि डाले तो वह वृक्ष आर्द्र हो तो भी जल जाता है, वैसी हालत तुम हमारी कर रहे हो, 'गोविन्द' नाम लेने से गोकुल के भगवान् की लीला का स्मरण हो आया, जिससे जाना कि भगवान् हमारे मन से तिरोहित होकर गोकुल पधार गए हैं इस भावना के जागृत हाने से महान् दुःख हुआ, यह सूचित किया, यदि इस समय हम पूर्ववत् शीतल न होकर तप्त हुई आई हैं जिससे तुमको रोष है तो भी जो मलय वायु सर्प आदि से ग्रसित हो कर आ रहो है उसका अपकार कौन कर सकता है ? यह सूचित किया है ।।१६।।

आभास—तामससात्त्विक्यस्तु मेघं भगवत्सदृशं दृष्ट्वा चन्द्रव्यवधायको जात इति क्षणं शैत्यं प्राप्ता इव तं स्तुत्वा पश्चात्स्वधर्मारोपेण तमपि दुःखितं कल्पयित्वा तद्दुःखापनोदनं साम्येन कुर्वन्ति **मेघ श्रीमन्निति** ।

आभासार्थ—तामस-सात्त्विकी (महारारिणयों) तो मेघ को भगवान् के समान वर्ण वाला देखा और वह चन्द्रमा को ढांक रहा है जिससे क्षण भर मानो शीतलता के आनन्द को प्राप्त हुई अतः उसकी स्तुति करने लगी, पश्चात् उसमें अपने धर्मों का आरोपण कर उसमें भी दुःखी होने की कल्पना कर, उसके दुःख को साम्यभाव से मिटाती है, जिसका वर्णन 'मेघ श्रीमन्' श्लोक में करती है—

श्लोक—**मेघ श्रीमन्स्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनं**
श्रीवत्साङ्कं वयमिव भवान्ध्यायति प्रेमबद्धः ।

अत्युत्कण्ठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः
स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसङ्गः ।।२०।।

श्लोकार्थ—हे श्रीमन् मेघ ! तूं अवश्य भगवान् यादवेन्द्र का प्यारा है। प्रेम के बन्धन से बद्ध तुम हमारी तरह श्रीवत्स के चिन्ह वाले प्रीतम का ध्यान करते रहते हो; क्योंकि तुम्हारे हृदय में उनके लिए अतिशय उत्कण्ठा व्याप रही है, जिससे तुम बार-बार उनका स्मरण कर-कर हमारे समान आंसूओं की धारा बहा रहे हो, इससे तुम्हारा हृदय भी लौकिक कर्म पूर्ण न करने से निन्दा का पात्र बन गया है, उनसे मित्रता करनी भूल है; क्योंकि दुःख देने वाली है ।।२०।।

सुबोधिनी—मेघे परमा शोभा विद्युदादिरूपा वर्तत इति श्रीमान् भवति। तदृशं तं सम्भावयन्ति। त्वं भगवतः दयितोऽसि श्यामत्वात्पीतवसनत्वात् प्राणिभ्यो जीवनदातृत्वात्तापहारकत्वाच्चेति। अत एव नूनं दयितः। ननु तर्ह्यहं सुखी युष्मानपि सुखयुक्ताः करिष्यामीत्याशङ्क्याहुः श्रीवत्साङ्कं वयमिव भवान् ध्यायतीति। तत्रापि न स्वास्थ्यं, मित्रं हि मित्रं भावयति तस्मिन् प्राप्ते दृष्टे वा तस्य सुखम्। इदानीमन्तर्भगवान् शेत इति तस्य दर्शनाभावात् केवलं तं ध्यायति। ननु सोऽपि सुखेन शेते। ततो मित्रस्य सुखावस्थां स्मृत्वा सुखी भवेन् न तु कदाचिद्दुःखं प्राप्नुयादित्याशङ्क्याहुः श्रीवत्स एव अङ्कः चिह्नं यस्येति। ब्राह्मणास्तस्यातिक्रमं कुर्वन्तीति चिन्तया दुःखमित्यर्थः। यथास्माकं श्रीवत्से लक्ष्मीस्तिष्ठतीति साम्प्रतं तया सह स्थितोऽस्मान्न गणयतीति दुःखं तस्मादेकस्यैव श्रीवत्सस्य उभयोर्दुःखे निमित्तत्वमिति वयमिवेत्युक्तम्। विस्मरणं क्रियतामित्याशङ्क्याहुः प्रेमबद्ध इति। प्रेम्णा अन्तःकरणे बद्धो विस्मर्तुमशक्य इत्यर्थः। नन्वहं सुखी दुःखितधर्मा मयि भवतीभिः के दृष्टा इत्याकांक्षायामाहुः अत्युत्कण्ठ इति। पञ्चविधः क्लेशस्त्वय्युपलभ्यते। आदावुत्कण्ठातिशयस्त्वयि मानसः। शबलहृदय इति शबलं लौकिककर्मणि वाच्यत्वेनोपस्थिते हृदयं यस्तेति। अत एव समागतमपि गर्जनं निवारय। अतोऽस्मद्विधः धूसरो गतिहीनो विच्छायश्च जातः। उपर्यासीनं दृष्ट्वा वदन्ति। एतस्य सर्वस्यापि नियामकं दुःखमाहुः बाष्पधारा विसृजसीति। पुनः पुनर्विरम्य विरम्य वर्षणं जायत इति स्मृत्वा स्मृत्वेत्युक्तम्। पुनः पुनः स्मरणं चातिदुःखदम्। नन्वस्माभिः कोऽपराधः कृतः येनास्माकं दुःखं भवेदित्याशङ्क्याहुः दुःखदस्तत्प्रसङ्गः इति। तस्य प्रसङ्गमात्रमेव दुःखहेतुः, प्रकृष्टः सङ्गः सुतरामेव। अन्यथास्माभिर्वा कोऽपराधः कृतः। जगति च कोऽप्येतादृशो न दृश्यते यो भगवत्सम्बन्धं प्राप्य क्षणं वा स्वस्थो भवति। इदं च दूषणं प्रसङ्गानन्तरमिति। अननुभूतो न जानातीति न बाधकत्वम् ।।२०।।

व्याख्यार्थ—मेघ को 'श्रीमान्' विशेषण इसलिए दिया गया है कि मेघ विद्युत आदि से शोभावाला है ऐसे उस मेघ का ये आदर करती हैं, तूं भगवान् का प्रीतम है, क्योंकि तूं वर्ण में भगवान् के श्याम वर्ण सम वर्ण वाला है, वस्त्र भी उनके सदृश पीले हैं, तथा प्राणियों को जीवन भी देते हो, और उनके ताप को भी मिटाने वाले हो, इन कार्यों के कारण तूं भगवान् को 'प्रिय' है तब तो मैं सुखी हूँ, जिससे तुम लोगों को भी सुखी करूंगा, यदि मेघ यह कहदे तो इस पर कहती

हैं कि तू भी सुखी नहीं है क्योंकि तू भी हमारी तरह श्रीवत्स के चिन्ह वाले का मात्र ध्यान कररहे हो तुझे भी उनके दर्शन नहीं होते हैं, कारण कि इस वक्त भगवान् सो रहे हैं मित्र हो मित्र के भावों को जानता है, भगवान् के दर्शन होने पर वा मिलने पर ही आनन्द होता है वह भो सुख से सो रहे हैं, इससे मित्र (भगवान्) की सुखावस्था देख कर मित्र (मेघ सुखी होता है, कभी भी दुःख नहीं करता है, इस प्रकार को शङ्का पर कहतो हैं कि भगवान् श्रीवत्स के चिन्ह वाले है, ब्राह्मण उसका अतिक्रमण करते हैं, इसकी चिन्ता से दुःख होता है यों अर्थ है, जैसे लक्ष्मी श्री वत्स में रहती है किन्तु अब वह लक्ष्मी भगवान् के पास है, जिससे भगवान् लक्ष्मी के साथ होने से हमको ध्यान में भी नहीं लाते हैं, इससे हमको दुःख है, वैसे ब्राह्मण लक्ष्मी के अतिक्रम से भगवान का अपमान करते हैं. जिसकी चिन्ता से मेघ को दुःख होता है, एक ही श्रीवत्स, दोनों के दुःख में कारण है, इसलिए कहा है कि 'वयमिव' हमारो तरह यदि कहो कि दुःख भूल जाओ तो इस पर कहा है कि 'प्रेमबद्धः' जिसको अन्तःकरण में प्रेम रज्जु से बांध रखा है उसको भुला नही सकते, मैं तो सुखी हूँ, मुझ में आपने कौनसे दुःखित के धर्म देखे हैं ? इस प्रकार की आकांक्षा होने पर कहता हैं कि, पांच प्रकार के क्लेश तुझ में हम देख रही हैं, १- भगवान् के दर्शन को उत्कण्ठा, यह पहला मानस क्लेश है, २- तेरा हृदय, बहुत जोर से नाद (शोर) करने के कारण लोक में निन्दा का पात्र हुआ है, यह दूसरा क्लेश है, अतः प्राप्त हुई गर्जना को भी रोक दे, ३- इससे तू हमारे समान धूसर, गति रहित और निस्तेज हो गया है, महिषियां आकाश में स्थित मेघ को देखकर ये वचन कह रही हैं, ४- इन सब दुःखों के नियामक दुःख को कहती है कि तू रुक रुक कर आंसुओं की वर्षा करता है, ५- बहुत दुःख होता है, तू बार बार प्रिय का स्मरण करता है, कारण कि बारबार स्मरण करने से दुःख होने से तुम इस प्रकार रुक रुक कर आंसू बहाते हो ।

यदि मेघ कहे कि हमने कौनसा अपराध किया है ? जो हमको इतना दुःख देते हैं ? जिसका उत्तर देती है कि 'दुःखदस्तत्प्रसङ्गः' उनका प्रसङ्ग मात्र ही जब दुःख का हेतु है तो विशेष सङ्ग तो दुःखदायी होगा ही यदि यों न होता तो हम महिषियों ने कौनसा अपराध किया है ? जगत् में कोई भी ऐसा नहीं दीखता है जिसने भगवान् से प्रेम कर क्षण मात्र भी सुख पाया हो, यह दोष तो भगवान् से सम्बन्ध जोड़ने के बाद जानने में आता है, जिसने इसका अनुभव नहीं किया है उसके लिए यह दोष बाधक नहीं, अतः जो अनुभवी नहीं हैं वे भगवान् से प्रेम करना चाहते हैं ॥२०॥

आभास—सात्विकसात्त्विक्यो निरूपयन्ति **प्रियरावपदानि भाषस** इति ।

आभासार्थ—'प्रियराव पदानि' श्लोक से सात्विक-सात्विकी महिषियां निरूपण करती है—

श्लोक—प्रियरावपदानि भाषसे मृतसञ्जीविकयानया गिरा ।
करवाणि किमद्य ते प्रियं वद मे वल्गितकण्ठ कोकिल ॥२१॥

श्लोकार्थ—हे वल्गित कण्ठ वाली कोयल ! तुम्हारा स्वर हमारे प्यारे के समान है, जिससे तू मरने वालों को जीवन-दान देने वाली वाणी से प्यारे के पद बोल रही है । अतः हम तुम्हारा क्या प्रिय करें ? वह बतादे ॥२१॥

सुबोधिनी—ताः कोकिलाशब्दं श्रुत्वा भगवानस्मानाकारयतीति क्षणं परमानन्दमनुभूय एतादृशं सुखमस्मभ्यं कोकिलवाक्याज्जातमिति तं स्तुवन्ति । प्रियस्य राववद्रावो यस्य, हे प्रियरावेति भगवत्सम्बन्धोस्मिन्वर्तत इति त्वया सह आलापेपि न किञ्चिद्दूषणमस्ति । ननु कथमेतदवगतं भगवद्वाक्यमेव तन्न भवति किन्तु कोकिलवाक्यमिति तत्राहुः पदानि भाषस इति । तदुच्चारिते वाक्यार्थो नावगम्यत इति न तदुच्चारितस्य वाक्यत्वम्, किन्तु भगवदुक्तपदानि स्मारयन्तीति सादृश्यात्पदत्वम् तर्ह्यतादृशवाण्याः क्वोपयोग इति चेत् तत्राहुः मृतसञ्जीविकयानया गिरेति । पूर्वं भगवद्विरहेण मृतप्राया जाताः । यदि क्षणमयं शब्दो न श्रुतः स्यात् तदा मृता एव भवाम इति । इयं वाणी मृतसञ्जीविका । अनया कृत्वा उपलक्षिताय तुभ्यं किं प्रियं करवाम । प्रत्युपकारेणापि तस्य हेतुत्वाद्वा तृतीया । तत्रैका विशेषतो वदति मे वदेति । मम स्थाने एकान्ते कथय । क्षीरोदन दास्यामीति भावः । परं त्वया एतादृशः शब्दः पुनः पुनर्वाच्य इत्यभिप्रायेणाहुः वलितकण्ठेति । वलितः कण्ठो यस्य । शब्दोच्चारणार्थं प्रयत्नं करोषि परं न वदसीति कथनबोधनार्थं सम्बोधनम् । कोकिलेति सम्बोधनं तस्य शब्दप्राधान्यत्वाय । २१॥

व्याख्यार्थ—महिषियों ने कोयल का शब्द सुनकर यों जान लिया कि, भगवान् हमको बुला रहे हैं, जिससे एक क्षण परमानन्द का अनुभव किया, अनन्तर जान लिया कि ऐसा यह सुख हमको कोयल के वाक्य से हुआ है; इसलिए उसकी स्तुति करती हैं ।

हे कोयल ! तेरा शब्द प्यारे के शब्द जैसा है क्योंकि इस शब्द में भगवान् का सम्बन्ध है, इसलिए तेरे साथ बातचीत करने में किसी प्रकार का दूषण नहीं है

आपने यह कैसे जाना कि, वह शब्द भगवान् का नहीं है कोयल का है जिसके उत्तर में कहती है कि 'पदानि भाषसे' कोयल का इसलिए जाना कि उन पदों में कोई अर्थ नहीं था, इसलिए वह वाक्य नहीं, किन्तु केवल भगवान् के कहे हुए पदों का स्मरण कराती है, इसलिए सदृशता के कारण इनमें पदत्व है,यदि कहो कि जब यों है तो ऐसी वाणी का उपयोग कहां होगा? इसपर कहती हैं कि इसका उपयोग हमारे जीवन में हुआ है, यदि एक क्षण भी यह पद न सुनती तो मर हो जाती, कोयल की यह वाणी मृतकों को जिलाने वाली है, इस ऐसी वाणी के कारण ही तू पहचानने में आई है, अब ऐसी आपका, हम क्या और कैसे स्वागत करें ? यदि यह स्वागत उपकार का बदला समझा जावे तो कोयल की वाणी प्रत्युपकार रूप मानी जाएगी, इसलिए वह तृतीया विभक्ति में कही गई है. वहां एक कहती है कि 'मे वद' अर्थात् मुझे एकान्त में बताओ कि भात मिला हुआ दूध दूंगी, कहने का यही भाव है, किन्तु तू ऐसा शब्द फिर फिर कहती रहना, इस अभिप्राय से 'वलित कण्ठ' विशेषण दिया है तुम्हारा कण्ठ सुन्दर है, शब्द उच्चारण करने का यत्न (कोशिश) करती हो किन्तु बोलती नहीं, इसलिए कथन का बोध कराने के लिए यह संबोधन दिया है, तू तो बोलने में मुख्य है अतः कोकिल ! यह दूसरा संबोधन दिया है ॥२१॥

आभास – सात्त्विकराजस्य आहुः **न चलसि न वदसीति** ।

आभासार्थ—सात्विक-राजसी 'न चलसि' श्लोक कहने लगी—

श्लोक — न चलसि न वदस्युदारबुद्धे क्षितिधर चिन्तयसे महान्तमर्थम् ।
अपि बत वसुदेवनन्दनाङ्घ्रिं वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥२२॥

श्लोकार्थ—हे उदार बुद्धि पर्वत ! तू न तो हिलता है और न कुछ बोलता है, जिससे प्रतीत होता है कि तुम किसी महान् विषय का चिन्तन कर रहे हो ? हमारी तरह तुम भी भगवान् के चरण अपने स्तनों पर रखना चाहते हो क्या ? ॥२२॥

सुबोधिनी अयमपि पर्वतो भगवच्चरणारविन्दधारणाद्भक्तो भवतीति निर्णीयते । तादृशोपि यन्नामोच्चारणं न करोति, अतस्तत्र कारणं पृच्छन्ति भ्रान्तत्वं निवारयन्त्येव हे उदारबुद्धे इति । उदारा बुद्धिर्यस्य इति । तस्य बुद्धिरेवं विचारयति किं नामोच्चारणेन आश्रयमात्रमेव कृतार्थं भविष्यति तथोपायः कर्तव्यः येन विश्वमेव कृतार्थं भवतीति विचारयति । अतः सर्व एव पुरुषार्थयुक्ता भवन्त्विति बुद्धिरुदारा भवति । अत एव महान्तमर्थं चिन्तयसे । अतो मनो निश्चलमिति कायोपि वागपि निश्चला तदाह न चलसि न वदसि इति । अस्य सौबुद्ध्ये उपपत्तिरस्तीत्याहुः क्षितिधरेति । भूमौ स्थितो यो भूमिं बिभर्ति सोत्यन्तं सुबुद्धिर्भवति । तर्हि क एतादृशो महानर्थो भविष्यतीति विचार्य स्वयमेव तमर्थमाहुः अपि बतेति । वसुदेवनन्दनस्यैव अङ्घ्रिरेतादृशो भवति । तमेकोपि चिन्तयन् विश्वं मोचयितुं शक्नोति । अतोङ्घ्रिचिन्तनमेव प्रायेण तवाभिलषितम् । नन्वेतत्कथं ज्ञायते न हि साधारण इममर्थं जानातीति चेत् तत्राहुः वयमिव कामयस इति । अस्माकमप्येषैव कामना स्तनोपरि भगवच्चरणः स्थापनीय इति । इदं तु शयाने भगवति अस्माकं पादसंवाहनादिना सिद्ध्यति । तव तु त्वदुपरि परिभ्रमणे । स्तनाः प्रत्यन्तभागाः पर्वतस्य, विशेषेण धारणं बन्धादौ । तस्य च सात्त्विकभावोद्रेकेण प्रस्तरादिषु चरणाकृतिधारणे यथा गयायां एतावान् विशेष इत्यर्थः । ॥२२॥

व्या०—यह पर्वत भी भगवान् के चरणारविन्द को धारण करता है जिससे जाना जाता है कि भगवद्भक्त है यों निर्णय किया जाता है, ऐसा (भगवद्भक्त) होकर भी भगवन्नाम का उच्चारण नहीं करता है, जिसका कारण पूछती है और भ्रान्तपन को मिटाती ही हैं, हे उदार बुद्धि वाले पर्वत ! इस विशेषण से यह सूचित करती है कि उदारबुद्धि होने से उसकी बुद्धि इस तरह विचार करती है कि नामोच्चारण से क्या लाभ ? केवल आश्रय लेने से ही जीव कृतार्थ हो जावेगा, इसलिए ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे सकल विश्व कृतार्थ हो जावे, अतः सब पुरुषार्थी बने ऐसी बुद्धि, उदार बुद्धि कही जाती है, अतएव तू महान् विषय का चिन्तन कर रहा है इस कारण से तेरा मन और काया दोनों स्थिर हैं, जिससे तू न हिलता है और न बोलता है इसकी इस प्रकार की सुबुद्धि में जो उपपत्ति है वह कहती है 'क्षितिधर' जो तू भूमि पर स्थित होकर उसको धारण कर रहा है इसलिए तू असीम सुबुद्धिवाला है ।

ऐसा कौनसा महान् विषय होगा ? उसका विचार कर स्वयं ही उस विषय को कहती है कि, वसुदेवनन्दन का ही ऐसा चरण है जिसका चिन्तन यदि एक भी करे तो वह एक, समग्र विश्व को मुक्त कराने में समर्थ हो सकता है, अतः भगवच्चरण का चिन्तन करना ही तुमको अभिलषित है, यदि कहो कि इसको आप कैसे जान सकी हो, साधारण मनुष्य तो इस अर्थ को नहीं जान सकता

है, इसके उत्तर में कहती है कि 'वयमिव कामयसे' हमारी भी यही कामना है कि अपने स्तनों पर भगवान् के चरणों की स्थापना करें, यह हमारा मनोरथ तो भगवान् के शयन समय पाद संवाहन आदि से सिद्ध होगा, तेरा तो तब होगा जब तेरे ऊपर भगवान् भ्रमण करेंगे, पर्वत के प्रत्यन्त भाग ही स्तन है, विशेष से धारण, बन्ध आदि में होता है, भगवान् के चरण स्थापन होने से उसके प्रस्तर आदि में सात्त्विक भाव के उद्रेक से कोमलता आ जाने से चरण चिन्ह लग जाते हैं जैसे गया में है-इतनी विशेषता है ॥२२॥

आभास—सात्त्विकतामस्य आहुः **शुष्यद्ध्रदा** इति ।

आभासार्थ—अब 'शुष्यद्ध्रदाः' श्लोक में सात्त्विक-तामसी अपने विचार प्रकट कर रही है—

श्लोक—शुष्यद्ध्रदाः करशिता बत सिन्धुपत्न्यः संप्रत्यपेतकमलश्रिय इष्टभर्तुः ।
यद्वद्वयं यदुपतेः प्रणयावलोकमप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ॥२३॥

श्लोकार्थ—हे समुद्रपत्नियों नदियों ! जैसे हम भगवान् के कृपा कटाक्ष को न पा कर हृदय चुराये जाने से अति दुर्बल हो गई हैं, वैसे तुम भी अभी मेघ द्वारा समुद्र का जल न पा कर दुर्बल, शुष्क ह्रद और कमलों की शोभा से रहित हो गई हो क्या ? ॥२३॥

सुबोधिनी—क्रीडापर्वतानां या नद्यः ता अन्तःपुरे स्थिताः, ताः पूर्वं अगाधजला वर्षासु, ततः क्रमेण क्षीणतायां निदाघे ह्रदानामपि शोषो जातः । एतन्निरूपणं स्वस्यातिकृशत्वज्ञापनार्थम् । बतेति खेदे । कियत्कालानन्तरं स्वरूपमपि गमिष्यतीति । ननु कया उपपत्त्या नद्यो गृह्यन्ते । कोपि धर्मो भगवदीयस्तासु नास्ति तत्राहुः सिन्धुपत्न्य इति । सिन्धोरम्बुराशेरपि पत्न्यो भूत्वा यथैताः परमक्षीणाः तथा वयमपि कोटिब्रह्माण्डाधिपतेरानन्दमूर्तेः पत्न्योपि वयं परमखेदं प्राप्नुम इति निरूपयितुं तासां कथा । शरीरक्लेशेपि यदि चिन्ता न भवेत् तदाप्यन्ततो गत्वा मुखवैवर्ण्यं न स्यात्तदपि नास्तीति ज्ञापयितुमाहु संप्रत्यपेतकमलश्रिय इति । एवमन्तःकरणक्लेशः शरीरक्लेशश्च कुतो जायत इत्याकांक्षायां स्वयमेव हेतुं कल्पयन्ति इष्टभर्तुर्यदुपतेः प्रणयावलोकमप्राप्येति । इष्ट प्राप्त्या मनसि क्लेशः । संवर्धकदृष्ट्यभावात् कृशत्वम् । यद्यपि नदीनां भर्ता समुद्रोऽस्ति । तथापि न स इष्टः । भगवांस्तु सर्वपतिरिति इष्टो भर्ता भवति । अत्र भर्तृपदं परिपालकपरम् । दृष्टान्ते व्यावृत्यप्रसिद्धेः । यद्वद्वयं । इष्टस्य भर्तुः सांप्रतमेव प्रणयावलोको नास्तीति क्षणमात्रेणैव कर्शिताः । सजातीयस्य सजातीयो भर्ता भवति । महांश्च तत्रापि स्नेहं कुर्यात् । एतज् ज्ञापयितुमाहुः यदुपतेरिति । अवलोको बाह्यः, स्नेह आभ्यन्तरः, उभयमप्यप्राप्य अन्तर्बहिश्च पुरुकर्शिताः । नन्वन्येन कथं न पुष्टा जायन्ते, यथा मिष्टान्नाभावे यादृशेनापि पुष्टो भवति लोकः । तत्राहुः मुष्टहृदया इति । हृदयस्य मोषः पूर्वमेव जात इति येन साधनेन कश्चिद् गृह्यते तद् भगवतैवापहृतम् । इति नातः परमन्येन पुष्टा भविष्यन्तीत्यर्थः ॥२३॥

व्याख्यार्थ—क्रीड़ा पर्वतों से उत्पन्न नदियां अब अन्तःपुर में स्थित हैं, वे पहले वर्षा के दिनों

में अगाध जल वाली थीं, अब ग्रीष्म ऋतु में धीरे धीरे क्षीण होने पर शुष्क हृदा हो गई हैं, यह निरूपण कर अपनी अतिशय कृशता बताई हैं, 'बन' शब्द खेद प्रकट करने के लिए दिया है, यदि यों होता रहा तो कुछ समय के अनन्तर शरीर भी नष्ट हो जायगा. कौनसी उत्पत्ति से नदियों का ग्रहण किया जाता है, उनमें तो कोई भी भगवदीय धर्म नहीं है, जिसकी सिद्धि के लिए कहती हैं कि 'सिन्धुपत्न्यः' ये भी जल के भण्डार महान् समुद्र की पत्नियां हैं अतः जैसे ये बहुत ही क्षीण हो गई हैं, वैसे हम कोटि ब्रह्माण्ड के अधिपति आनन्दस्वरूप की पत्नियां भी परम खेद को प्राप्त हुई हैं. यह निरूपण करने के लिए उनकी कथा कही है. शरीर से क्लेश होने पर भी यदि चिन्ता न होवे तो भी अन्त में जाकर मुख को विवर्णता न होवे, वह भी नहीं है, यों जताने के लिए कहती हैं कि 'संप्रत्यपेतकमलश्रिय' अब कमलों की शोभा भी नहीं रही है, इस प्रकार अन्तःकरण में क्लेश और शरीर में क्लेश कहां से उत्पन्न होता है? इस आकांक्षा के होने पर स्वयं ही हेतु की कल्पना करती है, इष्ट भर्ता यदुपति के प्रणय अवलोकन को न पाकर यह दशा हुई है, इष्ट की अप्राप्ति से ये मन में क्लेश हुआ है, और आनन्द को बढाने वाली दृष्टि के अभाव से कृशत्व हुआ है, यद्यपि नदियों का पति समुद्र है, किन्तु वह इष्ट नहीं है, भगवान् तो सबके पति होने से इष्ट भर्ता है, यहां 'भर्ता' पद का आशय यह है कि वह पूर्ण रीति से पालन करने वाले हैं, दृष्टान्त में व्यावृति की प्रसिद्धि नहीं है, जिस तरह हम, प्रिय भर्त्ता का अब ही प्रणय का अवलोकन नहीं है इसलिए क्षणमात्र ही कृश हुई हैं, सजातीय का भर्ता सजातीय होता है, यदि महान् होवे तो वहां (असजातीय में) भी स्नेह करे अर्थात् उसका भी पालन करे, यह जताने के लिए कहती हैं कि 'यदुपतेः' देखना तो बाहर का आनन्द है और स्नेह भीतर का आनन्द है, दोनों को भी न पाकर भीतर तथा बाहर अत्यंत कृश हुई हैं, जब यों उनसे कृश हुई हो तो अन्य से क्यों न पुष्ट होती हो? जैसे मिष्टान्न न मिले तो जिस किसी से भी लोक अपने को पुष्ट कर ही लेते हैं, इसका उत्तर देती हैं कि जिस हृदय से दूसरे को ग्रहण कर पुष्ट होवें उस हृदय को ही पहले उन्होंने (भगवान् ने) हर लिया है, अब दूसरे को किस साधन से ग्रहण करें? अतः दूसरे से पुष्ट हो नहीं सकती हैं, यों तात्पर्य है ॥२३॥

आभास— एवं बहिर्विचारयन्त्यः काश्चिद्गुणातीताः दूरे गताः। ततोऽन्तःपुर एव नद्यादितीरे विद्यमानं हंसं दृष्ट्वा आहुः **हंस स्वागतमिति**।

आभासार्थ इस प्रकार बाहर विचार करती हुई कितनी ही गुणातीत दूर चली गई पश्चात् अन्तःपुर में ही नदी आदि के किनारे पर हंस को देख कहने लगी 'हंस स्वागतम्'

श्लोक— **हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथां**
दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा।
किं वा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद्भजामो वयं
क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियः ॥२४॥

श्लोकार्थ—अचानक आए हुए हँस को देखकर उसमें दूतत्व की कल्पना कर कहने लगी कि हे हँस! तुम भले आए। आओ! बैठो, दूध का पान करो, भगवान् की बातें करो, यों न कहना कि मैं नहीं जानता हूँ; क्योंकि हम जानती हैं कि तुम

भगवान् के दूत हो, दूत सब कुछ जानता ही है। भगवान् अच्छी तरह तो हैं ? क्षणिक स्नेह रखने वाले, चञ्चल मन वाले भगवान् स्वयं जो कुछ हमें कह गए थे, उसे कभी याद करते हैं ? हे मधुर-सा बोलने वाले ! यदि वे हमें याद नहीं करते हों, तो हम उनको क्यों भजें ? यदि स्मरण करते हैं, तो उनको ले आइए, किन्तु अकेले को लाइए। यदि कहो कि लक्ष्मी इनकी प्रिय सेविका है, उसको छोड़कर आयेंगे, तो अन्य स्त्रियों से वे कनिष्ठ नहीं है क्या ? सर्व स्त्रियाँ सेवा की ही परायण होती हैं ॥२४॥

सुबोधिनी—तास्तु शुद्धाः भगवति सर्वथा दोषरहिताः अतः स्वहितमात्रमेव भावयन्ति। स्वस्य च हितं भगवत्सम्बन्धादेव स च सम्बन्धः मानवतीनां मानापनोदव्यतिरेकेण स्वतो न भवति। ततो भगवान्मानापनोदार्थमेनं प्रस्थापितवान्। अयं हि हंसः सदसद्विवेकं जानाति। अतोस्मान् गुणातीताः भगवत्पार्श्वं नेष्यतीति निश्चित्य सम्बोधयन्ति हंसेति। स्वार्थमागत इति कुशलं पृच्छन्ति। शीघ्रं वयं साध्या न भविष्याम इति ज्ञापयितुमास्यतामित्याहुः। नन्वस्माकं पक्षिणां नित्यं क्षुधितानां तन्निवृत्त्यर्थमुपायः कर्तव्यः। अतो गन्तव्यमिति चेत् तत्राहुः पिब पय इति। अनेनैतदपि ज्ञापयन्ति। अत्र स्थितो दुग्धमिव अस्मान्नेष्यसि। अन्यत्र गतो जलमिव अव्यक्तमधुरा नेष्यसीति। ननु स्थित्वा किं कर्तव्यमिति चेत् तत्राहुः ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथामिति। पितृनाम्ना शौर्यमुपपादयन्त्यः कथास्त्वमाहुः। न जान इति न वक्तव्यमित्याहुः दूतं त्वां नु विदामेति। नु इति वितर्के, पूर्वमपि हंसा दूता भवन्ति अतस्त्वमपि हंस इति। आगमने प्रयोजनान्तरस्याभावाद् दूतत्वमेव निर्धार्यते इत्यर्थः। अतो दूतत्वनिर्धारार्थं कथां कथय। नन्वपृष्टं नोच्यत इति चेत् तत्राहुः कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त इति। अजितत्वात् कुशलमस्त्येव परं सर्वान् मारयन् व्यग्रो भवेत् तदस्ति न वेति प्रश्नः। अथवा, स्वस्ति कल्याणरूपेण शुद्धरूपेण किमास्ते 'शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान्' इति वाक्यात्सम्बन्धे जाते अन्यथा भावो भवतीति। तथा सति स्वस्य तदानीं गमनं व्यर्थमेवेति। अजितत्वात्पराजयाभावोऽपीति संदेहात्प्रश्नः। कुशलेन वर्तते इत्यङ्गीकारेणैवोत्तरसिद्धौ प्रष्टव्यान्तरमाहुः उक्तं पुरा किं वा नश्चलसौहृदः स्मरतीति। पुरा यदुक्तं 'न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि' इति यत्पुरा उक्तं तत्किं स्मरति न वेत्यर्थः। ननु सर्वज्ञास्मरणे को हेतुरिति चेत् तत्राहुः चलसौहृद इति। न हि सर्वदा कोऽपि कमपि स्मरति। सौहार्दे सति स्मरणं भगवांश्च चलसौहृदः। सर्वथा स्मरति समागन्तव्यमिति चेत्तत्राहुः तं कस्माद्वयं भजाम इति। कार्यान्तराणि निवृत्तान्येव। सौहार्देपि सन्देहस्तस्मात्कारणाभावात् किमर्थं भजामः। तत्रापि वयं प्रसिद्धाः। तथापि क्रोधस्त्याज्यः समागन्तव्यमिति चेत् तत्राहुः हे क्षौद्रालापेति। क्षौद्रवच्छर्करावन्मिष्टः आलापो यस्य। तव केवलं वाङ्माधुर्यम्। क्षौद्रालापं यातीति क्षौद्रालापयः तस्य सम्बोधनम्। क्षौद्रेति सम्बोधनेपि मिष्टता व्यक्ता। क्षुद्रस्य सम्बन्धीति निन्दापरतया केचिदाहुः तमेव भगवन्तं आलापय कथय च कामदं भगवतं आलापय गानेन आलापनं कुरु। कामदं भगवन्तं प्रति वा क्षौद्रालापयो भवान् परमालापे लक्ष्म्या आलापो न कर्तव्यः। तदाहुः श्रियमृत इति। ननु सा परमभक्ता भगवदेकपरायणा कथं सह न गीयत इति चेत् तत्राहुः सैवैकनिष्ठा स्त्रिय इति। सैव किं

एकनिष्ठा अपि तु सर्वाः स्त्रियः, स्त्रीणां मध्ये इति षष्ठी वा । जात्यपेक्षया चैकवचनमिति केचित् । एवंभावाः स्त्रियः पर्यवसितनिरोधा वर्णिताः । ।।२४।।

व्याख्यार्थ—वे तो शुद्ध भाव वाली हैं, अतः कभी भी भगवान् में दोष रोपण नहीं करती हैं और यही भावना करती रहती हैं कि भगवान् सदैव भक्तों का हित ही करते हैं, कभी भी अहित नहीं करते हैं 'मात्र' पद का आशय यह है कि भक्तों के हित के सिवाय दूसरा कोई कार्य भगवान् नहीं करते हैं और अपना हित भगवान् से सम्बन्ध होने पर ही होता है, वह सम्बन्ध माननियों के मान के अपनोद के सिवाय, स्वतः नहीं होता है, इस कारण से भगवान् ने मानापनोदार्थ इस हंस को भेजा है, यह हंस सद् और असत् के विवेक को जानता है, अतः हम गुणातीतों को भगवान् के पास ले चलेगा, यों मन में निश्चय कर उसको संबोधन करती है कि, हे हंस ! अपने काम के लिए तुम आये हो ? यों कहकर कुशल पूछती है, फिर कहती हैं कि 'आस्यतां' बैठिए, जिसका आशय है कि हम तुम्हारे कहने में सरल रीति से शीघ्र न फसेंगी इसलिए बैठकर विचार विमर्श कीजिए, यदि कहो कि हम पक्षी हैं नित्य के भूखे ही हैं, उसकी (भूख को) निवृत्ति का पहले उपाय कीजिए, इस पर कहती हैं कि भूख के मारे यदि तुम बैठना नहीं चाहते हो तो हम उसका प्रबन्ध करती हैं आराम से बैठकर पहले पय पान कीजिए, दूध के पान कहने का यह भाव है कि यहां तो आए हुए आप हमको दुग्ध की तरह ले चलोगे, दूसरे स्थान पर तो जल की तरह जो अव्यक्त मधुरा है उनको लेजाओगे, यदि कहो कि यहां ठहर कर क्या करूगा ? इस पर कहती हैं कि 'ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथां' हे अङ्गः शौरी की कथाएं कहिए, पिता का नाम देकर शौर्य का प्रतिपादन कर कथा का सत्व कह रही है अर्थात् उनकी कथाएं ऐसी है जिनके सुनने की आकांक्षा प्रत्येक को रहती है, मै नहीं जानता हू यों नहीं कहना, क्योंकि हम जानती हैं कि तुम उनके दूत हो, दूत स्वामी के सर्व कार्यों को जानता ही है, 'नु' यह पद वितर्क में दिया है, पहले समय में भी हंस दूत कार्य करते थे, अतः तुम भी हंस हो जिससे निश्चय है कि तुम होकर यहां आए हो, उसके सिवाय यहां आने का कोई प्रयोजन नहीं हैं, आपका दूतत्व हमने निश्चय कर लिया है, इसलिए उनकी कथा कहिए, यदि कहो कौनसी कथा कहूं पूछे बिना नहीं कही जाती है,इस पर कहती हैं कि 'कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त इति' अजित भगवान् कुशल तो हैं ? यदि वे अजित हैं तो वे कुशल ही हैं फिर उनके कुशल का प्रश्न क्यों ? इस पर कहती है कि सबको मारकर व्यग्र तो नहीं हुए हैं ? इसलिए कुशल प्रश्न है, अथवा 'स्वस्ति' कल्याण रूप अर्थात् शुद्ध रूप में तो हैं ? 'शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान्' शयन से उठी हुई नारी पवित्र है किन्तु पुरुष अपवित्र है, इस वाक्य से यह बताया है कि भगवान् का किसी से सम्बन्ध तो नहीं हुआ है ? यदि सम्बन्ध हुआ होगा तो अशुचि होंगे, यदि यों सम्बन्ध हुआ होवे तो अशुचि हो तो हमारा वहां जाना ही व्यर्थ होगा, अजित होने से उसका पराभव भी नहीं हो सकता है इसलिए संदेह होने से ही प्रश्न है, कुशलेन वर्तते' इस अङ्गीकार से उत्तर की सिद्धि हो जाने पर दूसरा प्रश्न करती हैं, उक्तं' पुरा किं वा नश्चलसौहृदः स्मरति' पहले जो कहा था कि 'तुम्हारे समान प्रणयिनी घरों में नहीं देखता हूं' इस बात को याद करते हैं कि भूल गए हैं ? वे सर्वज्ञ हैं अतः कैसे भूल जाएंगे ? जिसका उत्तर 'चलसौ हृदः' पद से दिया है कि वे क्षणिक स्नेह वाले हैं, कोई भी किसीको हमेशा स्मरण नहीं करता है, सौहार्द है तो स्मरण रहता है, भगवान् क्षणिक सौहार्द है, यदि कहो कि स्मरण करते हैं आपको चलना चाहिए, जिसके उत्तर में कहती हैं कि, क्षणिक मैत्री करने वाले को हम क्यों भजें ? अन्य[1]

१- अन्य नायिकाएं समीप हैं ही जिससे हमारे सम्बन्धी भोग निवृत हो गए,

कार्य निपट ही गए, सौहार्द में भी सन्देह है कारण कि अभाव से हम उनको क्यों भजें ? वहां भी आप प्रसिद्ध हैं, वैसे भी तुमको क्रोध अब त्यागना चाहिए, क्रोध त्याग कर चलना चाहिए, यदि यों कहते हो तो हम कहती हैं कि तू मीठे बोल बोलने वाला है तुझमें केवल वाणी की मधुरता है।

क्षौद्रालापय ! जिसका अर्थ है मीठे आलाप की तरफ जाता है अर्थात् मीठी बोली बोलने वाला, इस सम्बोधन देने में भी मिठास प्रकट होता है, (कोई इसका अर्थ करते हैं हे क्षुद्र के सम्बन्धी ! हे क्षौद्र ! यह निन्दापरक अर्थ है) जो भगवान् कामनाओं को देने वाले हैं उनका गान करो, कामद भगवान् का आप मधुर आलाप से गान करने वाले हैं, अतः मधुर ध्वनि से करो, किन्तु उस गान में लक्ष्मी का आलाप नहीं करना चाहिए, जिसके लिए 'श्रियमृते' पद दिया है, यदि कहो कि वह (लक्ष्मीजी) परमभक्ता है और भगवान् के ही परायण है, ऐसी का भगवान् के साथ कैसे गान न किया जावे ? इसका उत्तर देते हुए कहती हैं कि 'सत्रैक निष्ठा स्त्रियः' क्या वह (लक्ष्मी) ही एक निष्ठ है ? अपितु सब स्त्रियां सेवा में एक निष्ठ हैं, अथवा स्त्रियों के मध्य[1] में इसलिए षष्ठि विभक्ति दी है, कोई कहते हैं जाति की अपेक्षा से एक वचन दिया है, इस भाव वाली स्त्रियां निरुद्ध वर्णित की गई हैं ॥२४॥

आभास—एवं स्त्रीणां क्रीडायां प्राप्तः संसारः निवारितः। ततो भगवद्भाव एवाविकल इति फलमुच्यते **इतीदृशेनेति**।

आभासार्थ—'इस प्रकार स्त्रियों को क्रीड़ा करते हुए जो संसार प्राप्त हुआ था, उसका निवारण किया, पश्चात् एक अविकल शुद्ध भगवद्भाव ही उनमें प्रकट हो गया, इसलिए 'इतिदृशेन' श्लोक से फल का वर्णन किया जाता है—

श्लोक—**इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे।**
क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम् ॥२५॥

श्लोकार्थ—योगेश्वरों के भी ईश्वर श्रीकृष्ण में इस प्रकार के भाव करने से माधव की महिषियों ने परम गति पाई ॥२५॥

सुबोधिनी—ईदृशो भावः सर्वप्रकारः लोकातीतः भगवतैव भ्रान्ततामापादितः। एतस्य मोक्षसाधकत्वं प्रमेयबलेनेति ज्ञापयितुमाह कृष्णे योगेश्वरेश्वर इति। योगादयोऽपि फलं प्रयच्छन्ति भगवदनुग्रहात्। स एव भगवान् कृष्ण इति तासां परमानन्दप्राप्तौ कः सन्देह इत्यर्थः। योगेश्वरा महादेवादयस्तेषामपि नियन्ता। साधनेषु योगो महानिति स एवोक्तः। भक्तियोगादयोऽपि योग(पद)वाच्याद्योगा एव। माधव्यो माधवस्य स्त्रियः। परमा गतिर्भगवत्प्राप्तिः। यद्यपि ता न भगवत्सम्बद्धाः तस्मिन्नपि क्षणे भगवन्त प्राप्तवत्य इत्यर्थः। नियमविधिवद् आसां फलसम्बन्धो व्याख्येयः। अन्यथा शरीरात्मादिविकल्पानां माधव्यादिपदैः सह विरोध आपद्येत ॥२५॥

१– स्त्रियों में से

व्याख्यार्थ –यद्यपि इस प्रकार का शुद्ध भाव सर्व प्रकार लोकातीत है, केवल भगवान् ने ही इसमें भ्रान्तता उत्पन्न कराई, इस भाव का मोक्ष साधकपन तो प्रमेय बल से ही है, यों जताने के लिए 'कृष्णे योगेश्वरेश्वरे' पद दिया है, अर्थात् इसका शुद्ध भाव, योगेश्वरों के ईश्वर कृष्ण में ही हैं, यद्यपि योग आदि भी फल देते हैं किन्तु भगवदनुग्रह होने पर दे सकते हैं, वह अनुग्रह कर्ता भगवान् कृष्ण ही हैं, यदि वह कृष्ण इनके पति हैं तो इनके परमानन्द प्राप्ति में कौनसा सन्देह है ? क्योंकि योगेश्वर जो महादेव आदि हैं, उनके भी आप नियामक हैं। साधनों में योग महान् साधन है, इसलिए वह ही कहा है, भक्ति योग आदि भी योग पद से कहे जाने के कारण 'योग' ही है 'माधव्य' 'माधव की स्त्रियां, परमगति' पद का अर्थ है भगवान् की प्राप्ति, यद्यपि वे भगवत्संबद्ध न थी तो भी उसी क्षण में ही भगवान् को प्राप्त हो गई, इनका फल सम्बन्ध नियम विधि[1] के समान कहना चाहिए, नहीं तो शरीर आत्मा आदि विकल्पों का माधवी आदि पदों से विरोध प्राप्त होगा ॥२५॥

१– 'नियमः पाक्षिके सति' इस न्यायानुसार भगवत्सम्बन्ध दीखने से पक्ष में फल सम्बन्ध प्राप्त ही है। 'लेभिरे' इस लिट् के प्रयोग से सूचित किया है कि जिनको दर्शन मात्र हुआ है—सम्बन्ध न हुआ है, उनको भी फल प्राप्ति (भगवत्प्राप्ति) हुई है, कारण, कि भगवान् से सम्बन्ध न होने की दशा में भी इस प्रकार के केवल शुद्ध भाव से भीतर (हृदय) में भगवान् का सम्बन्ध तो था ही, इसलिए इनकी भी परम गति रूप फल प्राप्ति में कोई सन्देह नहीं है।

२– 'माधवी' पद से यह प्रकट होता है कि ये माधव की स्त्रियाँ थीं, तो 'स्त्रीत्व' देह का ही होता है, जिससे सिद्ध होता है कि देह को ही भगवान् की प्राप्ति हुई, न कि इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण, जीव आदि को भगवत्प्राप्ति हुई है। इस प्रकार अपूर्व विधिवत् व्याख्या करने से देहातिरिक्त सङ्घात का 'माधवी' पद से विरोध होता है। नियम विधि पक्ष में तो अपूर्वपन से भगवान् की प्राप्ति पहले ही कही है। वहाँ विरोध परिहार "आत्मानं भूषयां चक्रुः" इस श्लोक में 'आत्मानं' पद से सर्व सङ्घात भगवद्भोग्य होने से 'आत्मा' पद से कहा गया है, वह ही यहाँ भी समझना चाहिए और वैसे सर्व सङ्घात ही भगवद्भोग्य है। अतः सर्व सङ्घात को स्त्रीपन है, न कि केवल देह को। अपूर्व विधि पक्ष में विरोध परिहार भी अपूर्व ही करना चाहिए। वह नहीं किया है, जिससे विरोध उपस्थित है।

नियम पक्ष में तो पहले कहा हुआ फल सम्बन्ध ही यहाँ स्थिर किया जाता है। इसलिए विरोध परिहार भी पहले जो कहा है, वह ही समझना चाहिए—यों भाव है।

अपूर्व पक्ष में 'इदृशेन भावेन' इस भाव का फल सम्बन्ध में कारणपन है और वैसे भाव का साधन रूपपन है, न कि फलरूपत्व है।

नियम पक्ष में तो वैसे नियम में भाव को केवल हेतुपन है, इससे फलरूपत्व निश्चित् सिद्ध होता है—कहने का यही निगूढ आशय है।

—'लेखाकार'

आभास—ननु बहिर्मुखानां संसाराविष्टचित्तानां संसारप्रकारेणैव भगवन्तमपि प्रपन्नानां कथमेवं सर्वसङ्घातस्य भगवति प्रवेशस्तत्राह **श्रुतमात्रोऽपीति ।**

आभासार्थ—संसार विष्ट चित्त वाले बहिर्मुखों का संसार के प्रकार तरीके से ही भगवान् के शरणागतों का इस प्रकार कैसे सर्व सङ्घात सहित भगवान् में प्रवेश हुआ ? इस पर 'श्रुतमात्र' श्लोक कहकर इस शङ्का का निवारण करते हैं—

श्लोक **श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मनः ।**
उरुगायोरुगीतानां पश्यन्तीनां कुतः पुनः ॥२६॥

श्लोकार्थ—अनेक प्रकार से गुण-गान करने वाली तथा गुणों को केवल श्रवण करने वाली स्त्रियों का भी जो भगवान् बलपूर्वक मन को हर लेते हैं, वे दर्शन करनेवालियों का मन हरण कर लेवें, तो इसमें कौनसा आश्चर्य है ? ॥२६॥

सुबोधिनी—भगवान् स्त्रीणामेवार्थे प्रादुर्भूत इत्युक्तम् अतस्तदर्थमेवावतारात् तत्कार्यमावश्यकमिति सम्बन्धमात्रमपेक्षते । तत्र श्रवणमात्रमतिसुलभः सम्बन्ध इति स एवोक्तः । मात्रशब्देन विचारादिव्युदासः । प्रमेयबलमेवात्र मुख्यमिति स्वयं प्रसह्य मनः आकर्षते, सर्वतः आकृष्य स्वस्मिन्नेव स्थापयतीत्यर्थः । तदपेक्षया कीर्तनकर्तॄणां विशेषमाह उरुगायोरुगीतानामिति । उरुगायो भगवान् उरुगीतो याभिः । प्रहतत्वायाविगीतत्वाय चोरुगायपदम् । तेषामपि मनः प्रसह्य आकर्षत इत्यर्थः । यद्यप्यत्रापि कैमुतिकन्यायो वक्तव्यः तथाप्यग्र एवोक्तः, अत्राप्यनुसन्धेयः ।

याः पुनरेव देशे स्थिताः पश्यन्ति तासां मनः आकर्षत इति कुतः सिद्धमेव भगवति मनस्तिष्ठतीति विषयसौन्दर्येणैव मनसो वशीकरणात् न प्रमेयबलमप्यपेक्षत इत्यर्थः । एतास्त्रिविधाः सगुणा निरूपिताः ॥२६॥

व्याख्यार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण का प्राकट्य स्त्रियों को आनन्द देने के लिए ही हुआ है, यों पहले कहा है । अतः उनके लिए ही अवतार धारण करने से उनका कार्य करना आवश्यक है, इसलिए केवल सम्बन्ध की ही अपेक्षा है । उसमें केवल श्रवण करना—यह अति सरल सम्बन्ध है, इसलिए वह ही कहा है । 'मात्र' पद देने का भावार्थ यह है कि अन्य विचारादि साधनों की अनावश्यकता बनाई है । यहाँ प्रमेय बल ही मुख्य है. इससे स्वयं ही बलपूर्वक मन को खींचकर अपने में स्थापित करते हैं, उसकी अपेक्षा कीर्तन करने वालों की विशेषता दिखाते हैं । उरुगायोरुगीतानां'—जिन्होंने भगवान् का बहुत कीर्तन किया है । 'उरुगाय' पद से यह प्रकट किया है कि बहुतों ने भगवान् के गुणों का गान किया है. तो भी भगवान् अप्रतिहत ही रहे हैं तथा वह कीर्तन गान रूप होने से उसको 'अविगति' कहा है । उनका भी मन बलपूर्वक अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं, यद्यपि यहाँ भी कौमुतिक न्याय कहना चाहिए, किन्तु आगे ही कहा हुआ है, उसका यहाँ भी अनुसन्धान कर लेना चाहिए ।

जो भगवान् के पास ही उपस्थित हैं और भगवान् के दर्शन कर रही हैं, उनका मन खींचते हैं यों कैसे कहा जाय ? कारण कि उनका मन भगवान् में स्थित है, यों सिद्ध ही है; क्योंकि विषय

की सुन्दरता से ही मन का वशीकरण हुआ है। अतः यहाँ प्रमेय बल की अपेक्षा नहीं है—ये तीन प्रकार की सगुणा निरूपण की गई हैं।।२६।।

आभास—गुणातीताः कैमुतिकन्यायेन सुतरां स्तौति याः संपर्यचरन्निति ।

आभासार्थ—गुणातीत महिषियाँ कैमुतिक न्याय से सुतरां 'याः संपर्यचरन्' श्लोक से स्तुति करती हैं—

श्लोक—**याः संपर्यचरन्प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः ।**
जगद्गुरुं भर्तृबुद्धया तासां किं वर्ण्यते तपः ।।२७।।

श्लोकार्थ—जो महिषियाँ जगद्गुरु भगवान् को पति समझकर उनकी प्रेमपूर्वक पाँव दबाने आदि की सेवा कर रही हैं, उनकी तपस्या का वर्णन क्या करें? ।।२७।।

सुबोधिनी—साक्षाद्देहसम्बन्धः सर्वभावेन यासां तत्रापि प्रेम्णेति आन्तरः सम्बन्धः । पादसंवाहनादिभिरिति बाह्यः । जगद्गुरुमिति क्रियया‌पि विहितप्रकारेणापि तासां फलसिद्धावुपाय उक्तः भर्तृबुद्धचेति तासां बुद्धिरप्युत्तमा निरूपिता । न तु गोपिकावज्जारबुद्धिरिति भावः ।।

व्याख्यार्थ—जिनका भगवान् के साथ सर्व भाव से साक्षात् देह सम्बन्ध है, किन्तु वह प्रेमपूर्वक होने के कारण आन्तर सम्बन्ध है।

पाँव दबाने आदि से जो सेवा है, वह बाह्य सम्बन्ध है। 'जगद्गुरुम्' पद से बताया है कि क्रिया से भी और वह सेवा शास्त्रोक्त प्रकार से करने पर भी फल सिद्धि का उपाय कहा है। पश्चात् 'भर्तृबुद्धचा'—पति की बुद्धि से सेवा करती हैं। इससे यह बताया है कि इनकी बुद्धि उत्तम है, गोपियों[1] की तरह जार बुद्धि नहीं है—यह भाव है।।

कारिका—बुद्धिः प्रपत्तिः सम्बन्धो द्विविधोऽपि विधेर्बलम् ।
प्रमेयबलमित्यासां षोढा कृष्णे निरूपिताः ।।
एकैकोऽपि महत्पुण्यसाध्यः षण्णां तु का कथा ।
अतस्तपःप्रशंसां हि तासां वक्तुं क ईशते ।।

कारिकार्थ—बुद्धि अनन्य[2] भक्ति सम्बन्ध दो प्रकार के होते हुए भी शास्त्र विधि के बल वाली

१- अन्तर्गृह में रही हुई गोपियाँ सोपाधिक प्रेमवालियाँ थीं। वह सोपाधिक (कामोपाधि वाला) स्नेह दो प्रकार का है— (१) भर्ता मानकर स्नेह करना और (२) जार मानकर स्नेह करना। इसमें भर्ता मानकर स्नेह करना उत्तम है; क्योंकि वह शास्त्र प्रमाणानुकूल है—यह निरुपाधि स्नेहवालियों का प्रकरण ही नहीं है।

२- शरण भक्ति

भर्तृ बुद्धि उत्तम है, जिसमे कृष्ण में इनका छः प्रकार से प्रमेय बल निरूपण किया है। जहाँ एक-एक महान् पुण्य से सिद्ध होता है, वहाँ छहों की सिद्धि में क्या कहा जाय ? अतः उनके तप की प्रशंसा कहने में कौन समर्थ है ?—कोई नहीं ।।२७।।

आभास – तदाह तासां किं वर्ण्यते तपः इति । एवं सर्वासां निरोधमुक्त्वा प्रसङ्गादपि कृतं भगवतोपेक्षितमेवेति संज्ञापयितुं उपसंहारे निरूपयति **एवं वेदोदितं धर्ममिति** ।

आभासार्थ – अतः श्लोक में वह ही कहा है कि 'तासां किं वर्ण्यते तपः'—उनके तप का क्या वर्णन किया जाय ? इस प्रकार प्रसङ्ग से भी किया हुआ सबका निरोध कहकर भगवान् ने उसकी उपेक्षा की है। यह जताने के लिए उपसंहार करने के समय 'एवं वेदोदितं धर्मम्' श्लोक से निरूपण करते हैं—

श्लोक—**एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन्सतां गतिः ।**
गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत्पदम् ।।२८।।

श्लोकार्थ—इस प्रकार सत्पुरुषों की गति भगवान् कृष्ण ने वेद में कहे हुए धर्म का पालन करते हुए बार-बार यह ही दिखाया है कि धर्म, अर्थ और काम; इन तीन पुरुषार्थों की सिद्धि का स्थान गृह (गृहस्थाश्रम) ही है ।।२८।।

सुबोधिनी—यथा निरोधोऽभिप्रेतः एवं वेदोदितोऽपि धर्मः लोकशिक्षार्थं भगवतोऽभिप्रेतः । तत्र हेतुः सतां गतिरिति । अन्यथा सन्मार्गव्यवस्था न स्यादिति सतां रक्षा न स्यादिति । न केवलं वैदिकधर्म एव भगवतोभिप्रेतः किन्तु स्मार्तोऽपि त्रिवर्गः । तदासक्तानां बुद्धिसंग्रहार्थमभिप्रेत इत्याह गृहं धर्मार्थकामानामिति । त्रिवर्गस्य पदं स्थानभूतं गृहमिति मुहुर्मुहुर्वारं वारं षोडशसहस्रप्रकारेण अदर्शयत् लोकेभ्यः प्रदर्शयामास । ।।२८।।

व्याख्यार्थ – भगवान् को जैसे निरोध अभीष्ट है, वैसे ही वैदिक धर्म भी लोक की शिक्षा के लिए अभीष्ट है। उसमें कारण यह है कि आप 'सतां गति'—सत्पुरुषों की गति हैं। यदि भगवान् यों न करें, तो सन्मार्ग की व्यवस्था न रहे, जिससे सत्पुरुषों की रक्षा खतरे में हो जावे। न केवल वैदिक धर्म ही भगवान् को अभीप्सित है, किन्तु धर्म, अर्थ और काम को देने वाला स्मार्त धर्म भी इच्छित है। उस स्मार्त धर्म में आसक्तों की बुद्धि के संग्रहार्थ यह त्रिवर्ग साधक स्मार्त धर्म भी अभिप्रेत है। इसलिए ही 'गृहं धर्मार्थ कामानां' 'त्रिवर्ग' अर्थात् धर्म, अर्थ और काम; इन तीनों की सिद्धि स्थान गृह अर्थात् गृहस्थाश्रम है। बार-बार (१६००० प्रकार से) लोगों को यह दिखा दिया है ।।२८।।

आभास – एवं भगवतो धर्मपरत्वमुक्त्वा स्त्रीणामतथात्वे गार्हस्थ्यं धर्मविरुद्धमिति तासामपि धर्मपरत्वं वक्तुमाह **आस्थितस्येति** ।

आभासार्थ—इस प्रकार भगवान् की धर्म परायणता कहकर स्त्रियाँ तो वैसी नहीं हैं, उनका गार्हस्थ्य धर्म विरुद्ध है। इस शङ्का को मिटाने के लिए वे भी धर्म परायण हैं, यों कहने के लिए 'आस्थितस्य' श्लोक कहते हैं—

श्लोक—आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम्।
आसन्षोडशसाहस्रं महिष्यास्तु शताधिकम् ॥२९॥

श्लोकार्थ—गृहस्थियों के उत्तम धर्म का आचरण करने वाले श्रीकृष्ण की स्त्रियों की सङ्ख्या सोलह सहस्र एक सौ आठ थीं ॥२९।

सुबोधिनी—परमोत्कर्षापन्नं धर्ममास्थितस्य कृष्णस्य स्वरूपत एकस्य गृहमेधिनां गृहस्थत्वेन नानारूपस्य षोडशसाहस्रं महिषीणामासीत्। महिष्या इति षष्ठ्येकवचनम्। यथा एकः कृष्णः बहवो गृहस्थाः तथैका महिषी षोडशसहस्रसङ्ख्यायुक्तेत्यर्थः। तुशब्दः प्रकारान्तरं वारयति। शताधिकमिति सहस्रस्य विशेषणं शतसङ्ख्यायुक्ताभ्योऽप्यधिकमित्यर्थः। एकापि स्त्री: शतस्त्रीभ्योप्यधिका सर्वभावेनेति ॥२९॥

व्याख्यार्थ—परमोत्कर्ष को प्राप्त धर्म में पूर्ण रीति से स्थित स्वरूप से एक कृष्ण के गृहस्थापन से नाना रूप वाले कृष्ण की १६००० पत्नियाँ थीं। श्लोक में 'महिष्याः' पद षष्ठी विभक्ति के एक वचन में दिया है जिसका आशय आचार्य श्री प्रकट करते हैं कि जैसे कृष्ण एक होते हुए भी प्रत्येक गृह में स्थित होने से १६००० रूप वाले दीखते हैं, वैसे ही एक ही महिषी १६००० सङ्ख्या वाली है। 'तु' शब्द अन्य प्रकार को निवारण करता है। यहाँ 'शताधिकम्' पद सहस्र का विशेषण है, जिससे इसका अर्थ शत सङ्ख्या युक्तों से भी अधिक है। तात्पर्य यह है कि एक स्त्री भी शत स्त्रियों से भी सर्व भाव के कारण अधिक है ॥२९।

आभास-एवं धर्मार्थतां निरूप्य प्रजासंपत्त्यर्थतापि तासां मुख्येति उपसंहारे तदप्याह **तासां स्त्रीरत्नभूतानामिति।**

आभासार्थ—इस प्रकार धर्म और अर्थत्व का निरूपण कर उनमें प्रजासम्पत्त्यर्थत्व भी मुख्य है, यों उपसंहार में वह भी 'तासां स्त्रीरत्नभूतानां' श्लोक में कहते हैं—

श्लोक—तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः।
रुक्मिणीप्रमुखा राजन्स्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥३०॥

श्लोकार्थ—महाराज! स्त्रियों में रत्न रूप इन स्त्रियों में रुक्मिणी आदि जो आठ पटरानियाँ पहले कही गई हैं, उनके पुत्रों के नाम भी कहे जाते हैं ॥३०॥

सुबोधिनी—यद्यपि सर्वासामेव दश दश पुत्रास्तथापि मुख्या एव कथिता इति उपसंहारे ता एवानुवदति। तासां स्त्रीरत्नभूतानां सर्वा एव सर्वत उत्कृष्टा इति रत्नपदप्रयोगः। तत्रापि अष्टौ याः प्रागुदाहृता रुक्मिणीप्रमुखाः ॥

व्याख्यार्थ - यद्यपि प्रत्येक के दस-दस पुत्र थे, तो भी यहाँ मुख्यों के ही उपसंहार में कहे गए हैं। 'रत्न' पद के प्रयोग से यह जताया है कि सब ही सबसे श्रेष्ठ थीं। उनमें भी रुक्मिणी प्रभृति आठ मुख्य थीं ॥

कारिका— रुक्मिणी सत्यभामा च कालिन्दी ऋक्षकन्यका।
सत्या भद्रा मित्रविन्दा लक्ष्मणेत्यष्टनायिकाः ॥

कारिकार्थ—(१) रुक्मिणी, (२) सत्यभामा, (३) कालिन्दी, (४) जाम्बवती, (५) सत्या, (६) भद्रा, (७) मित्रविन्दा और (८) लक्ष्मणा—ये आठ नायिकाएँ हैं।

सुबोधिनी—राजन्निति सम्बोधनं स्त्रीबाहुल्य-रसाभिज्ञानार्थं तत्पुत्राश्च उदाहृताः। आनुपूर्वशः ज्येष्ठानुक्रमेण। चकारात्पौत्रोप्युक्त इति ज्ञापितम् ॥३०॥

व्याख्यार्थ—'हे राजन्' इस सम्बोधन के देने का यहाँ यह आशय है कि राजा होने से आप भी बहुत स्त्रियों के रस को जानते हो, बड़े से लेकर क्रमपूर्वक पुत्र भी कहे हैं तथा 'च' पौत्र भी कह दिया है ॥३०॥

आभास—अनुक्तानां सर्वासां तुल्यत्वाय पुत्रादिसम्पत्तिमाह **एकैकस्यां दश दशेति।**

आभासार्थ— जिनके नाम नहीं कहे हैं, उन सबों की पुत्रादि सम्पत्ति समान है; यों इस 'एकैकस्यां दश दश' श्लोक में कहते हैं—

श्लोक— एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान्।
यावन्त्य आत्मनो भार्या अमोघरतिरीश्वरः ॥३१॥

श्लोकार्थ— सत्य सङ्कल्प ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी सब स्त्रियों में से दस-दस पुत्र उत्पन्न किए कारण कि आपकी रति निष्फल नहीं है ॥३१॥

सुबोधिनी— इच्छया पुत्रत्वव्यावृत्त्यर्थं आत्मजपदम्। प्रायिकव्यावृत्त्यर्थं यावत्य इति। दश भावा भवन्तीति सर्वेष्वपि भावेषु भगवान् अमोघरतिः। फलपर्यवसानं अमोघत्वम्। ननु दश दशैव कथमुत्पादिताः। 'दशास्यां पुत्रानाधेहि' इति श्रुतेरिति चेत्। तथापि नैतल्लोके नियतं तत्राह ईश्वर इति अशक्ताः श्रुत्यर्थपरिपालनं मा कुर्वन्तु नाम, शक्ताः कथं न कुर्वन्तीत्यर्थः ॥३१॥

व्याख्यार्थ—इच्छा से पुत्रत्व की व्यावृत्ति के लिए आत्मज' पद दिया है। किसी में हुआ किसी में न हुआ—इसकी व्यावृत्ति के लिए 'यावत्यः' पद दिया है। जितनी ही स्त्रियाँ थीं उन प्रत्येक में से दस-दस पुत्र उत्पन्न किए। काम दस इन्द्रियों से साध्य होने से उसके दस भाव हैं। अतः सर्व भावों में भगवान् सफल रति वाले हैं अर्थात् रति से फल होना यह ही अमोघत्व है यानि रति की सफलता है। दस-दस क्यों उत्पन्न किए ? जिसके उत्तर में कहते हैं कि श्रुति में आज्ञा है—'इसमें से दस पुत्र उत्पन्न कर'। अतः श्रुति वाक्य की सार्थकता दिखाने के लिए दस-दस पुत्र उत्पन्न

किए। श्रुति में तो कहा है, किन्तु लोक में ऐसा नियम नहीं दीखता है। इस पर कहते हैं कि 'ईश्वरः'—आप सर्व समर्थ हैं। जो अशक्त हैं, वे श्रुति की पालना न करें; किन्तु आप समर्थ होकर न करें, यह अनुचित है। अतः श्रुति का पालन कर इतने पुत्र पैदा किए ॥३१॥

आभास—धर्मार्थमेव भगवता पुत्रा उत्पादिता इति अष्टादशविद्यास्थानीयाः अष्टादश पुत्राः महावीर्या निरूप्यन्ते **तेषामुद्दामवीर्याणामिति**।

आभासार्थ—भगवान् ने धर्मार्थ ही पुत्र उत्पन्न किए। इसलिए अष्टादश विद्या के अनुसार अष्टादश पुत्र जो महान् वीर्य वाले हुए, उनका निरूपण 'तेषामुद्दाम' श्लोक में करते हैं—

श्लोक—**तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः।**
आसन्नुदारयशसस्तेषां नामानि मे शृणु ॥३२॥

श्लोकार्थ—उन पुत्रों में से जो अठारह पुत्र महारथी और बड़े पराक्रमी तथा यशस्वी हुए, उनके नाम सुनो ॥३२॥

कारिका—लक्षं षष्टि सहस्राणि तथाशीतिर्निरूपिताः।
केचित्सहस्रमधिकं प्राहुर्नैतन्मतं सताम् ॥

कारिकार्थ—वे पुत्र सब मिलकर १,६०,०८० हुए। कितने ही तो इससे एक सहस्र अधिक कहते हैं—वह मत सत्पुरुषों का नहीं है॥

सुबोधिनी—तेषां पुत्राणां मध्ये अष्टादश महारथाः सर्व एव च उद्दामवीर्याः। वस्तुतस्तु सर्व एव महारथाः, तथापि तावद्भिर्महारथत्व प्रकटीकृतमिति ज्ञापयति। आसन्निति। विद्यानां प्रामाण्यसिद्धयर्थं तावद्भिरेव वीर्यं प्रकटीकृतम्। भगवति विद्यमाने त्वन्येषां न प्रयोजनम् ॥३२॥

व्याख्यार्थ—उन पुत्रों में से अठारह महारथी हुए और सब ही अर्थात् अठारह ही बड़े पराक्रमी हुए। वास्तव में तो सर्व पुत्र महारथी थे, किन्तु इन अठारह पुत्रों ने अपना महारथीपन प्रकट कर दिखाया है, यों ज्ञापन करते हैं। विद्याओं की प्रमाणता सिद्ध करने के लिए उन्होंने ही वीर्य प्रकट किया। भगवान् के विद्यमान होने से दूसरों का कोई प्रयोजन नहीं है ॥३२॥

आभास—अतो लोकप्रसिद्धयर्थं तेषां नामान्याह **प्रद्युम्न** इति।

आभासार्थ—अतः लोक में प्रसिद्धि हो, इसलिए उनके नाम 'प्रद्युम्न' श्लोक से कहते हैं—

श्लोक—**प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च दीप्तिमान्भानुरेव च।**
साम्बो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥३३॥

पुष्करो वेदबाहुश्च श्रुतदेवः सुनन्दनः ।
चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ।।३४।।
एतेषामपि राजेन्द्र तनुजानां मधुद्विषः ।
प्रद्युम्न आसीत्प्रथमः पितृवद्रुक्मिणीसुतः ।।३५।।

श्लोकार्थ—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, अनिरुद्ध, दीप्तिमान, भानु, साम्ब, मधु, ब्रहद्भान, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोध नाम वाले पुत्र थे, जो महारथी थे ।।३३-३४।।

हे राजेन्द्र ! भगवान् के पुत्रों में रुक्मिणी का प्रथम पुत्र प्रद्युम्न पिता के समान महान् बलवान महारथी था ।।३५।।

सुबोधिनी—द्वितीयश्चारुदेष्णः अनिरुद्ध इति पाठेऽपि पुत्र एव कश्चिदनिरुद्धः । तेषामपि पुत्राः शतश इति पौत्राणां मध्ये एकेनैव महारथत्वं प्रकटीकृतमिति तमाह एतेषामपीति । मधुद्विषस्तनुजानामिति अत्यन्तं सामर्थ्यं निरूपितम् । तत्रापि प्रथमस्य विशेषमाह प्रद्युम्न आसीत्प्रथम इति । तस्य विशेषतो निरूपणस्य प्रयोजनमाह पितृवदिति । वैशिष्ट्ये हेतुमाह प्रथमो रुक्मिणीसुत इति । रुक्मिणी श्रेष्ठा तत्रापि प्रथमो वीर्यवत्तरो भवति ॥३३-३५॥

व्याख्यार्थ—दूसरा चारुदेष्ण था । 'अनिरुद्ध'—इस प्रकार के पाठ में भी कोई पुत्र अनिरुद्ध नाम वाला था, यों जानना चाहिए । उन पुत्रों के भी शत-शत पुत्र थे । पौत्रों में एक ने ही महारथीपन प्रकट किया है । उसको कहते हैं 'एतेषामपि'—इन्हों में भी भगवान् का 'मधुद्विट्' नाम देकर जो तनुज कहे हैं जिसका आशय है कि वे भी अत्यन्त सामर्थ्य वाले थे । उनमें भी प्रथम उत्पन्न प्रद्युम्न की विशेषता बताते हैं, जिस (विशेषता) का प्रयोजन प्रकट करने के लिए 'पितृवत्' कहा है अर्थात् यह एक ही पिता जैसा पराक्रमी आदि था, यों इसमें विशेषता क्यों हुई ? जिसका कारण 'प्रथमो रुक्मिणीसुतः'—रुक्मिणी का यह प्रथम पुत्र है । महिषियों में रुक्मिणी श्रेष्ठ थी, उस पर भी पहला बालक महान् वीर्य वाला होता है ।।३३-३५।।

आभास—वंशनिरूपणप्रस्तावे नवमस्कन्धशेषे भगवान्निरूपित इति मध्ये प्रश्नानुरोधेन वीर्याण्यपि निरूप्य तदन्ते शिष्टं वंशमाह **स रुक्मिणो दुहितरमिति** ।

आभासार्थ—वंश के निरूपण प्रस्ताव में जो नवम स्कन्ध में शेष रह गया था उस भगवान् का निरूपण किया, मध्य में प्रश्न के अनुरोध से वीर्यों का भी निरूपण कर उसके अन्त में शेष रहे वंश का वर्णन 'स रुक्मिणो दुहितरं' श्लोक में करते हैं—

श्लोक—**स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः ।**
तस्मात्सुतोऽनिरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः ।।३६।।

श्लोकार्थ – इस महारथी प्रद्युम्न ने रुक्मी की पुत्री से विवाह किया। उसमें से प्रद्युम्नजी को दस सहस्र हस्तियों के बल वाला अनिरुद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ ।।३६।।

सुबोधिनी—महारथ इति जित्वा हरणं द्योतितम्। ततः प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूत्। तस्य विशेषतो निरूपणे प्रयोजनमाह नागायुतबलान्वित इति ।।३६।।

व्याख्यार्थ—'महारथ' विशेषण देने का भावार्थ यह है कि जीतकर हरण प्रकट किया है, पश्चात् प्रद्युम्न से अनिरुद्ध उत्पन्न हुआ, अन्य पुत्रों का वर्णन न कर केवल अनिरुद्ध के वर्णन करने का भावार्थ यह है कि यह सबसे विशेष था, क्योंकि इसमें दश सहस्र हस्तियों का बल था अन्यों में नहीं था ।।३६।।

आभास— ततोऽपि वंशमाह **स चापीति**।

आभासार्थ – उसमें भी वंश हुआ जिसका वर्णन 'स चापि' श्लोक में करते हैं—

श्लोक – **स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो जगृहे ततः।**
वज्रस्तस्यामभूद् यस्तु मौसलादवशेषितः ।।३७।।

श्लोकार्थ – इस अनिरुद्ध ने रुक्मी की पोती से विवाह किया, जिससे वज्रनाभ पुत्र हुआ, जो मूसल[1] से होने वाली मृत्यु से बच गया था ।।३७।।

सुबोधिनी—रुक्मिणः, पौत्रीं, दौहित्र इति पदत्रयेण, मूलदोषसंसर्गदोषौ निरूप्य तादृश एव कलौ स्थास्यतीति ज्ञापितम्। तदाह वज्रस्तस्यामभूदिति। मौसलयुद्धादवशेषितः उर्वरितः।३७।

व्याख्यार्थ--रुक्मिणः, पौत्रीं, दौहित्रः इन तीन पद देने से मूल और संसर्ग दोष. दोनों दोषों का निरूपण कर यह बताया है कि कलियुग में ऐसे दोष रहेंगे, उस पौत्री) से अनिरुद्ध ने वज्रनाभ पुत्र उत्पन्न किया, जो मौसल युद्ध से बच गया था ।।३७।।

आभास—ततोऽपि वंशमाह **प्रतिबाहुरभूत्तस्येति।**

आभासार्थ--उससे भी जो वंश हुआ, उसका वर्णन 'प्रतिबाहुरभूत्' श्लोक में करते हैं –

श्लोक—**प्रतिबाहुरभूत्तस्य सुबाहुस्तस्य चात्मजः।**
सुबाहोः शान्तिसेनोऽभूच्छ्रुतसेनस्तु तत्सुतः ।।३८।।

श्लोकार्थ—उस (वज्रनाभ) को प्रतिबाहु पुत्र हुआ, उस (प्रतिबाहु) को सुबाहु पुत्र हुआ, सुबाहु को शान्तिसेन पुत्र हुआ, उस (शान्तिसेन) को श्रुतसेन पुत्र हुआ ।।३८।।

१—मूसल के कारण सब यादवों का नाश हुआ था जिससे यह बच गया।

सुबोधिनी—तस्य वज्रनाभस्य प्रतिबाहुः पुत्रोऽभूत् । तस्य च सुबाहुः, सुबाहोः शान्तिसेन-स्तस्य च श्रुतसेन इति चतुर्विधपुरुषार्थसाधकाश्चत्वारो निरूपिताः ॥३८॥

व्याख्यार्थ—वज्रनाभ को प्रतिबाहु, उसको सुबाहु पुत्र हुआ, सुबाहु को शान्तिसेन और उसको श्रुतसेन पुत्र हुआ, ये चार चतुर्विध पुरुषार्थों के साधक निरूपण किए गए हैं ॥३८॥

आभास— अन्येषां पुरुषार्थपर्यवसानं न भविष्यतीत्याशङ्क्य तन्निराकरणार्थमाह **नह्येतस्मिन्कुल इति ।**

आभासार्थ क्या दूसरे पुरुषार्थों को सिद्ध नहीं कर सकेंगे ? इस शंका का निवारण करने के लिए नह्येतस्मिन्' श्लोक कहते हैं—

श्लोक— **नह्येतस्मिन्कुले राजन् अधना अबहुप्रजाः ।**
अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥३९॥

श्लोकार्थ—हे राजन् ! इस कुल में कोई भी निर्धन, अल्प प्रजा वाला, अल्पायु, अल्प वीर्य और ब्राह्मणों का अभक्त जन्मा नहीं है ॥३९॥

सुबोधिनी—यादवकुले । राजन्निति सम्बोधनं संमत्यर्थम् । अधना दरिद्राः, अबहुप्रजाः 'एष्टव्या बहवः पुत्रा' इति वाक्यात् । न केऽप्यपेक्षितपुत्रविहीना इत्यर्थः । एतद्बहिरङ्गद्वयम् । आन्तरमाह अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्चेति । एवं चतुर्भिर्गार्हस्थ्यं निरूप्य ब्रह्मचर्यमिव निरूपयन्नाह अब्रह्मण्याश्चेति ॥

व्याख्यार्थ—हे राजन् ! यह संबोधन संमति के लिए है, दरिद्र, 'एष्टव्या बहवः पुत्राः' इस वाक्यानुसार इनमें कोई भी ऐसा नहीं था जो अपनी इच्छानुकूल पुत्र पैदा न करे, अर्थात् जिसको जितने पुत्रों की इच्छा होती थी वह उतने ही पुत्र पैदा कर सकता था, ये दो तो बाहर के विषय हैं, अब भीतर का विषय कहते हैं कि, अल्प पराक्रमी तथा अल्प आयु वाले भी नहीं होते थे, इस प्रकार इन ४ से गार्हस्थ्य का निरूपण कर ब्रह्मचर्य की तरह निरूपण करते हैं कि, ब्राह्मणों के भक्त थे ॥३९॥

कारिका— अर्थकामौ तथा धर्मश्चिरजीवित्वमेव च ।
एतत्साधारणं प्रोक्तं वीर्यं तु क्षत्रियत्वतः ॥३९॥

कारिकार्थ—अर्थ, काम, धर्म और महती आयु यह साधारण कहा है इनमें वीर्य तो क्षत्रियपन से स्वभाविक है ही ॥३९॥

आभास- ज्ञानार्थं तेषां संख्या वक्तव्येत्याह **यदुवंशप्रसूतानामिति ।**

आभासार्थ—वे कितने थे इसका हमको ज्ञान हो जावे इसलिए उनकी संख्या कहनी चाहिए, जिसका वर्णन यदुवंश प्रसूतानां' श्लोक में करते हैं—

श्लोक—**यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ।**
संख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप । ४०।।

श्लोकार्थ—हे नृप ! जिनके कर्म प्रसिद्ध हैं और जो यदुवंश में प्रकट हुए हैं, उनकी संख्या लाखों वर्षों में भी नहीं गिनी जा सकती है ।।४०।।

सुबोधिनी—सङ्ख्या वर्तते परं कर्तुमशक्या । अज्ञानमेव महत्त्वसूचकमिति । न योगजधर्मेण ज्ञात्वा कथनम् । एकेन पुरुषेण मार्कण्डेयवच्चिरजीविनापि वर्षायुतैरपि तेषां सङ्ख्या कर्तुमशक्येत्यर्थः । ४०।।

व्याख्यार्थ—इतनी संख्या है, जिसकी गिनती कर नहीं सकते उसका अज्ञान ही उसके महत्त्व का सूचक है, योगज धर्म से जानकर कहना नहीं चाहिए, मार्कण्डेय जैसी आयुष्य वाला एक पुरुष लाखों वर्षों में उनकी संख्या नहीं कह सकता है ।।४०।।

आभास—तर्हि कथं परिज्ञानम् । कोट्यर्बुदसंख्ययापि बुद्धिः पर्यवसितेति चेत् तत्राह **तिस्रः कोट्य** इति ।

आभासार्थ—तो उसका ज्ञान कैसे होगा ? यदि कहो कि कोटि और अर्बुद संख्या से भी बुद्धि कुण्ठित हो जाती है, इसके उत्तर में 'तिस्रः कोट्यः' श्लोक कहा है—

श्लोक—**तिस्रः कोट्यः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च ।**
आसन् यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ।।४१।।

श्लोकार्थ—यदुकुल के बालकों को पढ़ाने वाले तीस अर्बुद और आठ सहस्र आठ सौ आचार्य थे, यों सुना है ।।४१।।

सुबोधिनी—आदौ सहस्राणां तिस्रः कोट्यः त्रिंशदर्बुदानि । ततः अष्टाशीतिशतानि च । अष्टाधिकान्यशीतिशतानि । लक्षसंख्या भगवत्पुत्रेष्वेव निरूपितेति कोटिसंख्यां सहस्रसंख्यां शतसंख्यां ततो न्यूनसंख्यां चोक्तवान् । एतावन्तः यदुकुलाचार्याः यदुकुलोद्भवा एव आचार्याः । तत्कुमाराणामिति श्रुतमिति प्रमाणम् । बहूनां मध्ये कश्चिदाचार्यो भवितुमर्हति । बालकाश्चं कस्य स्थाने बहवोऽपि पठन्ति । अनेनैव तेषां बहुत्वं ज्ञातव्यमित्यर्थः ।।४१।।

व्याख्यार्थ—तीस अर्बुद आठ हजार आठ सौ, यदुकुल में उत्पन्न आचार्य थे जो कुमारों को विद्याभ्यास कराते थे, यों सुना है, एक लाख की संख्या तो केवल भगवत्पुत्रों की निरूपण की हुई है, इसलिए कोटि संख्या, सहस्र संख्या, शत संख्या उससे न्यून संख्या भी कही है, बहुतों में से कोई

आचार्य होने लायक हो सकता है, और बालक तो एक के पास बहुत ही पढते हैं, इससे ही इनका (यादवों का बाहुल्य जानना चाहिए ।।४१।।

आभास—तर्ह्य नेनैव प्रकारेण यादवानां संख्यां वदेत्याशङ्कयाह **संख्यानं यादवानां कः करिष्यतीति ।**

आभासार्थ—तब तो इसी ही प्रकार से यादवों की संख्या बतादें, इस शंका पर 'संख्यानं यादवानां' श्लोक कहते हैं—

श्लोक **संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम् ।**
यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते स आहुकः ।।४२।।

श्लोकार्थ—महात्मा यादवों की संख्या कौन कर सकता है ? जहाँ कई लक्ष यादव केवल उग्रसेन के राज्य में प्रजा है, वैसे ही सेवक अनेक हैं ।।४२।।

सुबोधिनी—यादवाः स्वरूपतोऽपि संख्यातुमशक्याः आनन्त्यात् ! तत्रापि विशेषमाह महात्मनामिति । एकैकस्य कोटिशः सेवकाः सन्तीति प्रधानगुणभावेन गणनायां सुतरामेवानन्त्यमित्यर्थः । अत एव मुख्ये सेवकानन्त्यं निरूपयति यत्रायुतानामिति । अयुतानामयुतस्य लक्षेण न्यर्बु दसहस्रे ण सेवकवर्गेण सह स आहुकः उग्रसेनो राजा आस्ते । एवमन्येषामपि सेवकवर्गो ज्ञातव्यः ।।४२।

व्याख्यार्थ—यादव अनन्त होने से स्वरूप से भी उनकी गिनती अशक्य है, फिर उनमें विशेषता यह है कि महात्मा हैं. एक एक महान् पुरुष के पास कोटि कोटि जितने सेवक हैं, इस मुख्य गुण भाव से गणना करने पर सुतराम उनकी अनन्तता प्रकट हो जाती है अतएव एक ही मुख्य के पास सेवकों की अनन्तता का निरूपण करते है, दश सहस्र का एक यूथ गिना जावे तो ऐसे दश हजार यूथ थे, इसके सिवाय लक्ष का यूथ एक गिना जावे तो वे भी दश हजार यूथ थे, इतने यादव तो केवल उग्रसेन की प्रजा में थे और इतने ही सेवक थे, इस प्रकार दूसरों के पास भी सेवक जानने चाहिए । ऐसी अवस्था में इनकी गिनती कैसे की जावे ।।४२।।

आभास—ननु जीवा उत्तमाः केचन एवोत्पद्यन्ते । एतावतां कथमेकदोत्पत्तिरिति चेत् तत्राह **देवसुराहवहता** इति ।

आभासार्थ--लोक में तो कोई कोई जीव उत्तम उत्पन्न होते हैं फिर यहां इतनी बड़ी संख्या एक ही स्थान पर एक ही समय कैसे उत्पन्न हुई ? जिसका उत्तर 'देवासुरा' श्लोक में देते हैं—

श्लोक—**देवासुराहवहता दैतेया ये सुदारुणाः ।**
ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे ।।४३।।

श्लोकार्थ— देवासुर संग्राम में जो भयङ्कर दैत्य मारे गए। वे मनुष्यों में प्रकट होकर गर्वी बनकर प्रजा को पीड़ा देने लगे ॥४३॥

सुबोधिनी- देवानामसुराणां च पूर्वं बहव एव आहवाः संग्रामा जाताः। तत्र ये दैतेयाः सुदारुणाः देवानां मूलभूतब्राह्मणनाशार्थं मनुष्येषु उत्पन्नाः। चकारात् अन्येऽपि तत्सम्बन्धिनः तेषामुत्पत्तौ पूर्वधर्माः समागता इति ज्ञापनार्थमाह प्रजा दृप्ता बबाधिर इति ॥४३॥

व्याख्यार्थ—पूर्व काल में देव असुरों की अनेक लड़ाईयाँ हुई हैं, उनमें जो दैत्य मरे, वे देवों की जड़, जो ब्राह्मण हैं उनके नाशार्थ मनुष्यों में उत्पन्न हुए 'च' पद से यह सूचित किया कि दूसरे भी इनके सम्बन्धी थे, उन (दैत्यों) के उत्पन्न होते हुए उनमें पहले के धर्म आगए थे यों बताने के लिए कहते हैं कि गर्व में आकर प्रजा को पीड़ित करने लगे ॥४३।

श्लोक—**तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवा यदोः कुले।**
अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ॥४४॥

श्लोकार्थ – हे नृप ! उनका दमन करने के लिए भगवदाज्ञा से देव लोग यदुकुल में प्रकट हुए, जिनके एक सौ एक कुल थे ॥४४॥

सुबोधिनी - ततो जगद्रक्षार्थं प्रवृत्तो भगवान् तेषां दैत्यानां निग्रहार्थं देवाः प्रोक्ताः आज्ञप्ताः। ततस्ते कोटिशो देवगणाः क्वचित्क्वचिदवतीर्णाः यदोः कुले तेषां मध्ये कुलानां शतमवतीर्णमेकमधिकं च। तत्रापि नायकरूपम्। नृपेति संबोधनं सन्तोषाय ॥४४॥

व्याख्यार्थ—पश्चात् जगत् की रक्षा करने में प्रवृत्त भगवान् ने उन दैत्यों के संहारार्थ देवों को आज्ञा दी कि तुम यदुकुल में जन्म ग्रहण करो, आज्ञा पाकर वे कोटिशः देवगण यदुकुल में कहीं कहीं प्रकट हुए, वे जो जन्मे उन यादवों के एक सौ एक कुल हुए, यादवों में ये कुल मुख्य गिने गए, नृप ! यह संबोधन संतोष के लिए है ॥४४॥

आभास—ननु देवा एवावतीर्णास्तावन्त इत्यत्र किं प्रमाणमिति चेत् तत्राह **तेषां प्रमाणं भगवानिति।**

आभासार्थ—इतने सब देव ही अवतरे हैं इसमें क्या प्रमाण है ? इस पर 'तेषां प्रमाणं भगवान्' श्लोक कहते हैं—

श्लोक—**तेषां प्रमाणं भगवान्प्रभुत्वे चाभवद्धरिः।**
ये चानुवर्तिनस्तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ॥४५॥

श्लोकार्थ—ये सब यादव श्रीकृष्णचन्द्र को अपना प्रभु मानते थे और सब बात

में इनके ही प्रमाण स्वीकार करते थे । जो यादव इनके अनुगामी रहे, वे सर्व प्रकार बढ़ते रहे ।।४५।।

सुबोधिनी—तेषां देवत्वे **भगवानेव प्रमाणं** । कथं भगवतः प्रामाण्यमिति चेत् तत्राह प्रभुत्वे चाभवदिति । यतस्तेषां प्रभुर्जातो भगवानतो ज्ञायते ते दैवा इति । न ह्यन्येषां भगवान् प्रभुर्भवति प्रभुसेवकयोः सजातीयत्वापेक्षणात् । ननु त एव प्रेषणीयाः किमिति तैः सह भगवानागत इति चेत् तत्राह हरिरिति । तेषां दुःखापनोदनार्थमागतः । अत एव कालादिकृतप्रतिबन्धाभावात् सर्व एव यादवाः तदीया अन्येऽपि भगवतो ये अनुवर्तिनः ते सर्वेऽत्यन्तं ववृधुरित्याह ये चानुवर्तिनस्तस्येति । प्रायिकत्वव्युदासाय सर्वपदम् । वृद्धिर्हि वटबीजाद्वटवज् ज्ञातव्या । एवं प्रसङ्गात्तेषां माहात्म्यमानात्यं भगवत्सम्बन्धान्निरूपितं । ।।४५।।

व्याख्यार्थ - वे देव थे इसमें प्रमाण भगवान् ही हैं, यदि कहो भगवान् प्रमाण कैसे ? इस पर कहते हैं कि ये श्री कृष्ण को ही अपना स्वामी मानते थे जिससे जाना जाता है कि वे देव हैं, भगवान् दूसरों के स्वामी नहीं बनते हैं । प्रभु और सेवक में एक जातीयता की अपेक्षा रहती है, अर्थात् स्वामी और सेवक की एक ही जाति होती है, यदि दैत्यों का दर्प दलन करना था तो देवों को ही भेजना था स्वयं क्यों पधारे ? जिसके उत्तर में कहते हैं कि 'हरि' है, दुःखों को हरण करने वाले होने से, उनके दुःख दूर करने स्वयं भी पधारे हैं, भगवान् के पधारने से, कालादि द्वारा कोई प्रतिबन्ध नहीं हो सकता था, सर्व ही यादव आप के थे उनके सिवाय जो दूसरे भी भगवान् के अनुयायी होकर रहे थे वे सब अत्यन्त बढ़े होंगे, ऐसे बढ़े होंगे, ऐसे बढ़े जैसे बट (बड़ के बीज से बट बढता हीं रहता है, इस प्रकार प्रसङ्ग होने से उनका माहात्म्य एवं उनकी अनन्तता भगवान् के सम्बन्ध से हुई यों निरूपण किया ।।४५।।

आभास—अत एव ते सर्वे सपरिकराः निरोधे निरूपिताः । तत्र तेषामधिकारापन्नानां वैयग्र्यसम्भवात् बहिर्मुखत्वसम्भवाच्च निरोधः सम्पन्नो न वेति शङ्कां निराकर्तुमाह **शय्याशनाटनालापेति** ।

आभासार्थ अतएव[1], वे सब परिकर सहित निरोध में निरूपण किए हैं, वहां पर शङ्का होती है कि, अधिकार प्राप्त उनमें व्यग्रता का संभव होने से और बहिर्मुखत्व का भी संभव होने से, निरोध सिद्ध हुआ वा नहीं हुआ ? इस शङ्का को मिटाने के लिए 'शय्याशनाटनालाप' श्लोक कहा है—

श्लोक — **शय्याशनाटनालापक्रीडास्नानासनादिषु ।**
न विदुः सन्तमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः ।।४६।।

श्लोकार्थ—यादवों का चित्त कृष्ण में ही इस प्रकार लग रहा है, जो वे सोते,

---

१—भगवत्सम्बन्धी होने से ही

खाते, फिरते, बोलते, खेलते, नहाते और अन्य कार्य करते अपने शरीर का भान ही भूल गए थे ॥४६॥

सुबोधिनी—सप्तपदार्थाः, भगवान् षड्गुण एव तेषां तथा जात इति ज्ञापयितुं निरूपिताः। शय्या च अशनं भोजनम्। अटनं परिभ्रमः। आलापः वार्ता। क्रीडा द्यूतादि। स्नानं आसनं च। एते सप्त पदार्थाः प्रकारपराः। तत्रैश्वर्यादिधर्मा योजनीयाः। तथा सति प्रकारतामापद्यन्ते। किं बहुना सर्वावस्थासु आत्मानं यथा स्थानस्थितं न विदुः। अनेन प्रपञ्चविस्मृतिरुक्ता। तदासक्तिमाह कृष्णचेतस इति। कृष्ण एव चेतो येषां, गोकुलस्थानां तु पूर्वमेव निरूपितम्। स्त्रीणां च राजसानां सात्त्विकानां चायं निरोध इति सम्पूर्णा निरोधलीला ॥४६॥

व्याख्यार्थ—लोक में सात पदार्थ अर्थात् सात प्रकार (तरीके) हैं जिनके करने से मनुष्य भगवान् को भूल जाता है क्योंकि प्रतिदिन करने से उनमें आसक्ति हो जाती है, परन्तु ये यादव इन सात पदार्थों को करते हुए भी भगवान् को न भूले, किन्तु उन सातों को अनासक्ति से कर रहे थे, इस श्लोक में इस प्रकार से उनका निरोध सिद्ध करते हैं—

सात पदार्थ है—षड्गुण भगवान् ही उनको वैसे हो गए, यह जताने के लिए वे सात पदार्थ निरूपण किए हैं, जैसे कि (१) सोना, (२) भोजन, (३) फिरना, (४ बोलना (५ क्रीड़ा (द्यूत आदि), (६) स्नान और (७) बैठना, ये सात पदार्थ-प्रकार पर हैं, इनमें ऐश्वर्य आदि धर्मों को जोड़ना, उन धर्मों को जोड़ने से वे प्रकारता को प्राप्त होते हैं, बहुत क्या कहें? सब अवस्थाओं में अपने को भूल गए, यह नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं क्योंकि प्रपञ्च भूल गए थे, कारण कि चित्त श्री कृष्ण में निरुद्ध होगया था, गोकुल में स्थितों का तो पहले ही कहा गया है, स्त्रियों का, और राजस तथा सात्विकों का यह निरोध कहा है, यों अब निरोध लीला सम्पूर्ण हुई ॥४६।

आभास—एवं लीलायामुपपादितायां भारतवद् भूभारहरणं विशेषाकारेण न निरूपितमिति शंकां व्यावर्तयितुं कैमुतिकन्यायनिरूपणाय भगवतो नानाविधानि माहात्म्यानि निरूपयति **तीर्थं चक्रे नृपोन**मिति।

आभासार्थ—इस प्रकार लीला प्रतिपादन करते हुए महाभारत की तरह इसमें भूभारहरण लीला का विशेष प्रकार से निरूपण नहीं किया है, इस शङ्का को मिटाने के लिए 'कैमुतिक न्याय' के निरूपणार्थ, भगवान् की अनेक प्रकार की लीलाओं का माहात्म्य 'तीर्थं चक्रे' श्लोक में कहते हैं—

श्लोक—**तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु स्वःसरित्पादशौचं**
विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपरा श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः।
यन्नामामङ्गलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः
कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधस्य ॥४७॥

श्लोकार्थ हे राजन्! भगवान् ने यदुकुल में प्रकट हो, कीर्ति रूप तीर्थ प्रकट

कर अपने पाद शौच रूप गङ्गा आदि तीर्थ को उससे न्यून कर दिया। शत्रु और मित्र दोनों को सारूप्य दिया। किसी से भी जो जीती नहीं गई है, ऐसी लक्ष्मी भी श्रीकृष्ण का आश्रय कर रही है। जिस लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए अन्य महादेव आदि प्रयत्न कर रहे हैं, तो भी उनको नहीं मिलती है। जिनका नाम केवल मुख से बोलो या कान से सुनो तो सर्व अमङ्गल नष्ट हो जाते हैं, वे ही भगवान् सर्व धर्म का आश्रय होने से जिस-जिस ऋषि वंश को लोक में प्रवृत्ति होने लगी, उसमें प्रवर्तक भी आप हुए—इसमें किञ्चिन्मात्र भी आश्चर्य नहीं है। इसी प्रकार जिनका आयुध काल-चक्र है, वे श्रीकृष्ण पृथ्वी का भार उतारें, इसमें कौनसी आश्चर्य की बात है?—कुछ आश्चर्य नहीं ॥४७॥

सुबोधिनी--किं भगवतो माहात्म्यं वक्तव्यं यत्किञ्चिद्यदुषु अजनि। चरित्रं, गुणाः, पुरुषाः, भगवत्सम्बन्धि यत्किञ्चित् तत्सर्वमेव प्रत्येकं तीर्थमूनं चक्रे। तत्किं तीर्थमित्याकांक्षायामाह स्वःसरिदिति। गङ्गेत्यर्थः। यदुकुलावतीर्णभगवत्सम्बन्धि यत्किञ्चित्सर्वमेव प्रत्येकपदार्थमात्रमपि गङ्गातोऽप्युत्तममित्यर्थः। एतस्य तथात्वं भगवतैव कृतमिति ज्ञापयति चक्र इति। स्वयं तस्य चरित्रस्य तथा माहात्म्यं दत्तवानित्यर्थः। ननु तथापि ये युक्त्यैव पदार्थानङ्गीकुर्वन्ति तेषामत्र कथं बुद्धिर्भविष्यतीत्याशङ्क्याह **स्वःसरिदपि पादशौचमिति**। प्राणिनः सर्वसम्बन्धिपदार्थापेक्षया पादशौचमपकृष्टं, तत् पुरुषः पुनर्न स्पृशति। स्वःसरिदिति भूमिष्ठायाः पातालस्थायाश्च तत्रत्यदोषसम्बन्धात् कदाचिद्दोषोऽपि भवेदिति। एवमेकं माहात्म्यं निरूपितं सामान्यरूपं जडसाधारणम्। जीवेषु विशेषमाह **विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरिति**। द्वेषरागयोरपि मोक्षसाधकत्वं जातमित्यर्थः। तस्मात् कृष्णावतारे यः कश्चन धर्मः मोक्षं दास्यतीति निरूपितम्। भगवतः सकाशादैहिकसिद्धौ हेतुमाह अजितपरा श्रीरिति। लक्ष्मीर्भगवत्परा। अतः स्वामी सेवकेभ्य एव दास्यति नान्येभ्य इत्यनायासेनाप्यैहिकसिद्धिः। इदं तृतीयं माहात्म्यं परम्पराप्रकारेणागतम्। प्रसङ्गाद्भगवत्सम्बन्धिन्या लक्ष्म्या माहात्म्यमाह येनान्येषु माहात्म्यं निराकृतं भवति। **यदर्थे अन्ययत्न** इति। यस्या लक्ष्म्याः सम्बन्धयर्थे अर्थरूपे पुरुषार्थे अन्येषां महान् यत्न एव, प्राप्तिस्तु संदिग्धेत्यर्थः। यत्रार्थ एव पुरुषो हीनोऽप्यन्येषां संदिग्धः तत्र धर्मादिषु का वार्ता इत्युक्तम्। एवं भगवत्सम्बन्धिपदार्थमात्रस्य जीवानां शक्तेश्च माहात्म्यं निरूप्य नाम्नो माहात्म्यमाह यन्नामामङ्गलघ्नमिति। यस्य अमङ्गलं नाशयति। सम्बन्धमात्रमपेक्ष्येति वक्तुं श्रुतमिति। **गदितं** तु ततोऽपि भिन्नप्रकारेण हेतुसहितमपि अमङ्गलं नाशयतीत्यर्थः। ननु ऋषिपरम्परागतस्य धर्मस्य माहात्म्यं भविष्यतीत्याशङ्क्याह येनैव भगवता कृतासु ऋषिपरम्परासु वर्तमानो धर्मः। एवं षड्विधं माहात्म्यमुक्तम्। यस्यैतावन्माहात्म्यं तस्य एतद्भूभारहरणलक्षणं तदर्जुनादिभिः कृतं तच्चित्रं न भवति जीवधर्मत्वात्। ननु कश्चिद्धर्मः सेवकैरेव कर्तुं शक्यते न प्रभुणेति भूभारहरणं भगवतः अशक्यमेव कुतो न भवतीत्याशङ्क्याह **कालचक्रायुधस्येति**। कालरूपं चक्रमायुधं यस्येति। कालसहस्रांशेनापि भूभारो हर्तुं शक्यः। तत्र पूर्णः कालः भगवतः सुदर्शनमेकं आयुधमिति कः सन्देहो भूभारहरणेऽपि ॥४७॥

व्याख्यार्थ—भगवान् ने यादवों में प्रकट होकर जो कुछ कर्म किए उनका कुछ माहात्म्य कहना चाहिए, चरित्र, गुण, पुरुष और भगवत्सम्बन्धी जो कुछ भी हैं वे सब ही आपके चरण से प्रकट हुए गङ्गा तीर्थ से भी उत्तम तीर्थ है, यदुकुल में प्रकट हुए भगवान् से जिस किसी का भी सम्बन्ध हुआ है वह सब ही अर्थात् प्रत्येक पदार्थ मात्र भी गङ्गा से उत्तम है, ये सब गङ्गा आदि तीर्थों से कैसे उत्तम माने जावे ? जिसके उत्तर में कहा कि चक्रे। भगवान् ने इन सब को अपने सम्बन्ध होने के कारण गङ्गादि से उत्तम किया है, आपने ही इन चरित्रादिकों को इतना माहात्म्य दिया है परन्तु, जो पुरुष युक्ति से ही किसी भी बात को मानते हैं उनको बुद्धि इसमें स्थिर कैसे होगी ? अर्थात् वे कैसे मानेंगे ? जिसका उत्तर देते हैं कि 'स्वः सरिदपि पाद शौचम्' गङ्गाजी भी आपके चरणों का शौच जल है, प्राणी के सर्व प्रकार सम्बन्ध हुए पदार्थों की अपेक्षा पाद शौच अनुत्तम अर्थात् निकृष्ट हैं, जिस जल से पैर धोये जाते हैं उस जल का फिर स्पर्श भी नहीं किया जाता है, गङ्गाजी, पृथ्वी पर रहने के समय पृथ्वी के दोषों के सम्बन्ध वाली होती है और पाताल में रहने के समय पाताल के दोषों के सम्बन्ध वाली हो जाती है, इससे कदाचित् उसमें दोष भी आ जावे, किन्तु अब भगवान् से जिनका सम्बन्ध हुआ है वे निर्दोष तीर्थ रूप बन गए हैं अतः वे उत्तम तीर्थ रूप हैं, इस प्रकार एक माहात्म्य जो जड़ साधारण और सामान्य रूप है उसका निरूपण किया, अब जीवों में आपका माहात्म्य वर्णन करते हैं। शत्रु और मित्र दोनों को अपने स्वरूप में लय कर दिखाया। इससे दिखा दिया है कि कृष्ण को द्वेषी और मित्र दोनों समान हैं, जिससे द्वेष करने वाले और राग प्रेम करने वाले दोनों को मोक्ष दिया है। इसलिए यह सिद्ध किया है कि कृष्णावतार में प्रत्येक धर्म मोक्ष देगा अर्थात् कृष्ण में किसी प्रकार भी आसक्त हो, तो मोक्ष प्राप्ति हो जाती है। अब भगवान् से इस लोक के पदार्थों की सिद्धि भी होती है, जिसका कारण बताते हैं कि लक्ष्मी जो अजित है अर्थात् जिसको जीतकर कोई भी अपने आधीन नहीं कर सकता है, वह लक्ष्मी भगवान् के परायण है अर्थात् आधीन है। अतः भगवान् लक्ष्मीपति होने से सेवकों के ही सर्व मनोरथ बिना श्रम के पूर्ण कर देते हैं, यह तीसरा माहात्म्य परम्परा प्रकार से आ गया, प्रसङ्ग से भगवत्संबंन्धिनी लक्ष्मी का माहात्म्य कहते हैं, जिससे भगवान् के सिवाय दूसरों के माहात्म्य का निराकरण हो जाता है।

'यदर्थे अन्ययत्नः'—जिस लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए अन्य देव महादेवादि पुरुषार्थ करते रहते हैं, किन्तु प्राप्ति संदिग्ध ही है अर्थात् प्राप्त नहीं होती है। इससे यह कहा है कि जहां अर्थ में ही हीन हैं अर्थात् अर्थ प्राप्त नहीं कर सकता है, दूसरों में संदिग्ध है, तब धर्म आदि की वार्ता क्या की जाय? इस प्रकार भगवान् के सम्बन्धी जो भी पदार्थ हैं और जीवों के शक्ति का माहात्म्य निरूपण कर अब भगवान् के नाम का माहात्म्य कहते हैं। 'यन्नामामङ्गलघ्नं'—जिस भगवान् के नाम अमङ्गलों को नाश करते हैं। नाम से केवल सम्बन्ध होना चाहिए, वह सम्बन्ध सुनने के कारण हो, तो अमङ्गल नष्ट हो जाते हैं। यदि नाम का वाणी से सम्बन्ध हो अर्थात् नामोच्चारण मात्र किया जावे, तो किसी भी कारण से अमङ्गल हुआ हो, तो वह भी नाश हो जाता है।

यह ऋषि परम्परागत धर्म का माहात्म्य होगा ? इस शङ्का का निवारण करते हैं कि ऋषि परम्पराएँ भी भगवान् ने की हैं, इसी तरह षड्विध माहात्म्य कहा। जिस भगवान् का इतना माहात्म्य है, उसने स्वयं प्रत्यक्ष भूभार हरण कार्य न कर अर्जुनादि से कराया। इसमें किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं है; क्योंकि यह जीव धर्म होने से जीव कार्य है।

कोई धर्म सेवक ही कर सकते हैं, स्वामी नहीं कर सकता है। इसलिए यों क्यों न कहा जाय कि भूभारहरण कार्य भगवान् के लिए अशक्य था ? इस शङ्का का निवारण करते हैं कि 'काल चक्रायुधस्य'—जिन भगवान् का काल रूप चक्र आयुध है, काल का सहस्रांश भी जब भूभारहरण करने में समर्थ है, तब पूर्ण काल रूप भगवान् का सुदर्शन चक्र दैत्यों का नाश कर भूभार का हरण करें, इसमें कौनसा सन्देह है ? कुछ भी सन्देह नहीं है† ।।४७।।

आभास—एतादृशोऽपि भगवान् साम्प्रतं क्वास्तीत्याकांक्षायामाह **जयति जननिवास** इति ।

आभासार्थ—ऐसे भगवान् अब कहाँ हैं ? इस आकांक्षा के होने पर 'जयति जननिवास' श्लोक कहते हैं—

श्लोक – **जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो**
यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां वर्धयन्कामदेवम् ।।४८।।

श्लोकार्थ—जन मात्र (जगत्) में निवास करने वाले, जिसके लिए देवकी से जन्म लिया, यों कहना केवल वाद ही है। इच्छा मात्र से अधर्म को मिटाने में समर्थ होते हुए भी उत्तम यादवों की सभा में उपस्थित अपने भुजा रूप सेवकों द्वारा क्रीड़ा करते हुए अधर्म को दूर करने वाले, स्थावर और जङ्गम दोनों के पापों को नाश करने वाले अपने सुन्दर मन्द-मन्द हास्य और शोभायुक्त मुखारविन्द से व्रज व पुर की स्त्रियों के कामदेव की वृद्धि करते हुए श्रीकृष्ण सदा सर्वत्र सबसे जय पा रहे हैं ।।४८।।

सुबोधिनी—स कृष्णो भगवानिदानीमपि तत्सम्बन्धिजनेषु सर्वेष्वेव जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । यतोऽयं जननिवासः । स्वभावतोऽपि सर्वेषु जनेषु निवसति । परमात्मा सर्वान्तरः । ननु देवकीपुत्रं पृच्छामि यो देवक्यां जातः स क्व वर्तत इति । तत्राह देवकीजन्मवाद इति । देवक्यां जन्मवादमात्रम् । लोकाः विवादे सति भगवान् क्वापि न स्तीत्युक्तौ सिद्धान्तनिरूपणप्रस्तावे वीतरागाः देवक्यां जातोऽस्तीत्याहुः, न तु तावन्मात्ररूपत्वं तस्येत्यर्थः । ननु स सर्वत्र किं कुर्वन् तिष्ठतीत्याकांक्षायां तस्य त्रिविध कर्माह । तत्र सात्त्विकं निरूपयति यदुवराणां परिषदि सभायामपि केवललौकिकपरेऽपि ये स्वाः स्वकीयाः सेवकाः सन्ति तैरपि अधर्मजात सर्वमेव दैत्यादि-

———

† इसका स्पष्टीकरण भगवान् ने गीता में कर दिया है कि ये सब मैंने मार दिए है, तू केवल लौकिक रीति से निमित्त बन । अतः वास्तव में भगवान् ने ही भूभारहरण किया है । – 'लेख'

रूपं अस्यन् क्षिपन् अद्यापि भगवान् द्वारकायां यादवसभायां सेवकैः सह विराजते। यदि कश्चिदेतन्मध्ये दैत्यः प्रकटो भवेत् तदा तत एव कश्चित्प्रेषयित्वा तं मारयतीत्यर्थः। तामसं चरित्रमाह स्थिरचरवृजिनघ्न इति। द्वारकाव्यतिरिक्तस्थाने सर्वत्रैव यत्र यत्र परिभ्रमणं कृतवान् तेषां सर्वेषामेव प्रसङ्गादपि वृजिनं पापं दूरीकरोति। ये वा पुरुषा ये वा वृक्षाः। वृजिनस्यैव वा स्थिरचरभेदौ प्रकारवासनारूपौ। अनेन सर्वत्रैव भगवानस्ति यदि भक्तो भवेदिति निरूपितम्। राजसमाह सुस्मितश्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन्कामदेवमिति सुस्मितं शोभायुक्तं यन्मुखारविन्दं तेनैव व्रजे गोकुले पुरे मथुरायां द्वारकायां च याः स्त्रियः गोपिकाः कुब्जाप्रभृतयो महिष्यश्च तासां हृदये कामदेवं वर्धयन् आस्ते। कामस्य देवत्व मोक्षपर्यवसानात्। योऽस्त्येव सर्वेषु तमेव वर्धयन् स्वसम्बन्धमात्रेणैव मोक्षं प्रयच्छतीत्यर्थः। एषा पूर्वकथा। पूर्वं यादृशी तादृश्येवेदानीमपि। तथैव तेषु स्थानेषु करोति। अत्रार्थान्तरमपि ध्वन्यते। अत्यन्तमोहिकया लोके परमसौन्दर्यं प्राप्तया भक्त्या व्रजस्थितानां पुरस्थितानां च ग्रामेऽरण्ये च निवसतां काममुद्बोधयन् आस्त इति तस्य देवत्वं मन्तव्यम्॥४८॥

व्याख्यार्थ—वे श्रीकृष्ण भगवान् अब भी उनके (अपने) सम्बन्धी जनों में सर्व प्रकार के उत्कर्ष से विराज रहे हैं; क्योंकि आप स्वभाव से भी सकल जनों (जगत् भर) में निवास करने वाले हैं ही। जैसे कि कहा है 'परमात्मा सर्वान्तरः'—परमात्मा सबके भीतर विराजते हैं। हम परमात्मा के विषय में नहीं पूछते हैं, केवल जिसने देवकी के यहाँ जन्म लिया था, वह देवकी पुत्र अब कहाँ है? जिस शङ्का का निवारण करते हुए कहते हैं कि देवकी जन्मवादः'—देवकी से जन्म लिया, यह केवल कहने के लिए ही है। जब लोग विवाद (बहस) करते हैं कि भगवान् तो कहीं भी नहीं हैं, तब उनके विवाद का निराकरण करने के लिए वीतराग (भक्त व ज्ञानी) कहते हैं कि देवकी में से जो प्रकट हुए हैं, वे भगवान् हैं, किन्तु भगवान् इतने ही हैं, यों नहीं समझना। वे भगवान् सर्वत्र किसलिए व क्या करते हुए विराजते हैं? ऐसी आकांक्षा होने पर उनके तीन प्रकार के कर्म का वर्णन करते हैं, जिनसे यह ज्ञात हो जायगा कि वे सर्वत्र किसलिए व क्या करने के लिए विराज रहे हैं? इन तीन प्रकार के कर्मों में से पहले सात्त्विक कर्म का निरूपण करते हैं। 'यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम्'—यदुश्रेष्ठों की सभा में भी जो केवल लौकिक परायण अपने सेवक हैं, उन सेवकों से अधर्मोत्पन्न समस्त दैत्यों का नाश कराते हुए आज भी भगवान् द्वारका में यादव सभा में सेवकों के साथ विराज रहे हैं अर्थात् यदि कोई इनमें दैत्य प्रकट हो जाय, तो तब वहाँ से ही किसी को भेजकर उसका नाश करा देते हैं।

दूसरा तामस कर्म कहते हैं। 'स्थिरचरवृजिनघ्न'—स्थावर और चेतनों के पापों का नाशक, यह विशेषण देकर तामस कर्म कहा है। द्वारका* के सिवाय अन्य स्थानों में जहाँ भी आप(भगवान्) भ्रमण करते हैं, वहाँ जो भी पुरुष वा वृक्ष आदि होते हैं, उन सबके दोनों तरह के पापों का नाश करते हैं [पाप दो तरह के हैं—एक वे जिन कर्मों के करने का शास्त्र में निषेध है; जैसे हत्या आदि। उन कर्मों के करने से उत्पन्न पाप स्थिर (स्थावर) हैं, वे पाप भोगे बिना नष्ट नहीं होते हैं। दूसरे पाप मन से भावना करने पर वासना द्वारा उत्पन्न होते हैं, वे पाप चर हैं, वे बिना भोग के भी नाश

———

* द्वारका में स्थित जनों में पाप-प्राप्ति नहीं होती है. इसलिए द्वारका के सिवाय कहा है।

हो जाते हैं] । इस वर्णन से यह सूचित किया है कि जहाँ भी भक्त होता है, वहाँ सर्वत्र भगवान् विराजते हैं ।

तीसरा राजस कर्म कहते हैं । 'सुस्मितश्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन्कामदेवं'—शोभायुक्त सुन्दरस्मित वाले मुखारविन्द से गोकुल, मथुरा और द्वारका की स्त्रियाँ जो गोपी, कुब्जा आदि तथा पटरानियाँ उनके हृदय में कामदेव को बढ़ाते रहते हैं । काम को यहाँ देव कहने से यह सिद्ध किया है कि इस काम से मोक्ष-प्राप्ति होती है, जो काम सब स्त्रियों में पहले ही स्थित है, उसको ही बढ़ाते हुए अपने सम्बन्ध मात्र से मोक्ष देते हैं—यों अर्थ है ।

यह पूर्व कथा जैसे पहले थी वैसी ही अब भी है, वैसे ही उन स्थानों में करते हैं । यहाँ दूसरा भाव भी प्रकट होता है । लोक में परम सौन्दर्य को प्राप्त अत्यन्त मोहिका भक्ति से व्रज में स्थित, पुरों में स्थित और ग्राम वा अरण्य में स्थित सबके काम को जागृत करते रहते हैं, इसलिए इस काम में देवत्व† है । विशेष में भगवद्रूपत्व है—यों मानना चाहिए ।।४८।।

आभास—एवं चरित्रमुपपाद्य तत्र शुकः श्रवणादिकं विधत्ते नित्यत्वाय **इत्थं परस्येति ।**

आभासार्थ—इस प्रकार भगवच्चरित्र का प्रतिपादन, उस चरित्र का नित्य श्रवण करना चाहिए; यों शुकदेवजी 'इत्थं परस्य' श्लोक में कहते हैं—

श्लोक—**इत्थं परस्य निजधर्मरिरक्षयात्त-**
लीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि ।
कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य
श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ।।४९।।

श्लोकार्थ—अपने भक्तों की रक्षार्थ, लीला विग्रह धारण करने वाले अक्षर से उत्तम और यदुकुल में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों की सेवा की इच्छा वाले पुरुषों को चाहिए कि उनके किए हुए लीला चरित्रों को नित्य श्रवण करें; क्योंकि उन (श्रीकृष्ण) के कर्म (चरित्र) कर्मों के बन्धन को नाश करने वाले हैं ।।४९।।

सुबोधिनी— पूर्वोक्तप्रकारापन्नं अन्यदपि भगवच्चरित्र इत्थमित्यनेन परिगृह्यते । अक्षरादपि परः निजधर्मा ये भक्तास्तेषां रिरक्षया आत्ता लीलातनुर्येन । तादृशस्य परमकृपालोस्तदनुरूप-

† भगवान् का मुखारविन्द स्वतः भक्ति रूप है, यदि उसमें मुस्कराहट और शोभा उत्पन्न होती है, तो वह मोहक हो जाता है, जिससे व्रज और पुरों की स्त्रियों में पूर्व स्थित काम जागृत हो, आधिदैविक रूप होता है और वैसे ही भगवद्भोग्याओं में स्थित काम भगवद्रूप बन जाता है—यों अर्थान्तर पद से ध्वनित होता है । —'लेख'

विडम्बनानि । तत्रास्यानुरूपतया लोकप्रकारं विडम्बयन्ति यानि कर्माणि भोजनशयनादीन्यपि तानि शृणुयादिति विधिः अश्रवण प्रत्यवाय इत्यर्थः । ननु किं श्रवणेनेति चेत् तत्राह कर्मकषणानीति । सर्वपापनाशकानि । पापक्षयस्तेषामानुषङ्गिकं फलमित्यर्थः । यद्यप्यवतारान्तरचरित्रमपि पापनिवर्तकं भवति तथापि यदूत्तमस्य शृणुयात् । को विशेष इति चेत् तत्राह अमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन्निति । कृष्णचरणारविन्दयोश्चेदनुवृत्ति वाञ्छति तदेतदेव श्रोतव्यमित्यर्थः ।।४६।।

व्याख्यार्थ—पूर्वोक्त प्रकार वाले दूसरे भी भगवच्चरित्र श्रवण करने चाहिए—यों 'इत्थं' पद से भाव प्रकट किया है । भगवान् अक्षर से भी उत्तम हैं जिन्होंने अपने भक्तों के रक्षार्थ लीला-विग्रह धारण किया है, ऐसे परम कृपालु के वे सब चरित्र जो नाट्य रूप से भोजन, शयन आदि किए हैं, वे चरित्र लोक प्रकार का अनुकरण मात्र करते हैं, उनको अवश्य सुने—इस प्रकार की आज्ञा है, जिसके उल्लङ्घन से प्रत्यवाय (पाप) लगता है, सुनने से क्या लाभ ? जिसके उत्तर में कहते हैं कि 'कर्मकषणानि'—कर्म के बन्धनों को तोड़ देते हैं । पाप-क्षय तो उनका आनुषङ्गिक (प्रासङ्गिक) फल है, यद्यपि अन्य अवतारों के चरित्र भी पाप मिटाने वाले हैं, तो भी 'यदूत्तमस्य शृयात्'—यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण के ही चरित्र सुनने चाहिए । श्रीकृष्ण-चरित्र श्रवण में कौनसी विशेषता है ? जिसके उत्तर में कहते हैं कि यदि श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा की इच्छा हो, तो इनके ही चरित्र श्रवण करने चाहिए ।।४६।।

आभास—नन्वेवं नित्यतया श्रवणे चरणानुवृत्तौ वा किं भविष्यतीत्याकांक्षायामाह **मर्त्यस्तयेति** ।

आभासार्थ—इस प्रकार नित्य सेवा करने से वा चरणारविन्द की सेवा करने से क्या लाभ होगा ? ऐसी आकांक्षा होने पर यह 'मर्त्यस्तया' श्लोक कहते हैं—

श्लोक—मर्त्यस्तया तनुसमेधितया मुकुन्द-
श्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति ।
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं
ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ।।५०।।

श्लोकार्थ—प्रति क्षण श्रीकृष्णचन्द्र की सुन्दर कथा का श्रवण व कीर्तन सहित चिन्तन करने से वृद्धिगत हुई सेवा से मनुष्य काल के दुस्तर वेग को शान्त करने वाले भगवान् के धाम को प्राप्त होते हैं । जिस धाम की प्राप्ति के लिए बड़े-बड़े राजा भी अपना राज्य छोड़ अन्त में वनवासी होते हैं ।।५०।।

सुबोधिनी—तया चरणानुवृत्त्या मरणधर्माप्ययं पुरुषः शरीरेण तद्धाम एति । ननु तदानीमेव तस्य वैकुण्ठागमनं नोपलभ्यत इति चेत् तत्राह तनुसमेधितयेति । तनु अल्पमल्पं समेधितया तैलधारावदनवच्छिन्नश्रवणादिभिः क्रमेण यदा पुष्टा भवति, तनौ शरीरे वा समेधिता ।

नन्विति पाठे अप्रतारणार्थं सम्बोधनम् । तस्या अनुवृत्तेः पोषणार्थं त्रीण्यङ्गानि निरूपयति श्रीमत्कथायाः श्रवणं कीर्तनं चिन्ता च यस्यामिति । श्रीमदित्यनेन पामराणां वक्तुमजानतां सम्बन्धिनी कथा व्यावर्तिता । भगवद्धाम्नः सर्वोत्कृष्टफलत्वाय विशेषणमाह दुस्तरकृतान्तजवापवर्गमिति । दुस्तरः सर्वप्रकारैरपि निराकर्तुमशक्यः तस्य जवस्य वेगस्य मारणार्थं धावनरूपस्य अपवर्गः समाप्तिर्यत्र । मृत्युस्तावदेव धावति यावदक्षरं, अक्षरपर्यन्तमेव कालनिरूपणात् । तेनाक्षरात्मकं व्यापिवैकुण्ठ यातीत्यर्थः । एतत्फलं ज्ञानमार्गेऽपि दुर्लभमिति ज्ञापयितुमाह ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्था इति । पूर्वं क्षितिभुजः राज्ये स्थित्वा राज्यपरिपालनधर्मेण परिपक्वाः सन्तः नगरादिकं विहाय ग्रामे कलापग्रामादौ ज्ञाननिष्ठाः सन्तस्तिष्ठन्ति । ततोऽपि भगवन्माहात्म्यमवगत्य तदपि विहाय वनं सर्वगूढं स्थानं ययुरित्यर्थः । ग्रामशब्दो ग्राम्यपरो वा । यस्य श्रवणमात्रमेव राज्यापेक्षयापि सर्वोत्कृष्टम् । अन्यथा स्थितं विहाय कथं ते विवेकिनः वनं गच्छेयुः । यदेव पदं अर्थः पुरुषार्थो येषां ते यदर्थाः ॥५०॥

व्याख्यार्थ—भगवान् के चरणों की सेवा से मरण धर्म वाला होने पर भी यह पुरुष उसी शरीर से भगवद्धाम को प्राप्त होता है। उसी समय ऐसा ज्ञान नहीं होता है कि यह मर्त्य वैकुण्ठ में आ रहा है। इस पर कहते हैं कि 'तनु समेधितया'—जब मरण धर्म वाला तेल की धारा के समान निरन्तर श्रवण करता रहता है, तब शरीर शनैः-शनैः पुष्ट होता है अर्थात् शरीर सेवा करने से अलौकिक बन जाता है और सेवा भी 'चेतस्तत्प्रवणं'—सेवा का धीरे-धीरे रूप धारण कर पुष्ट हो जाती है। उस सेवा की अनुवृत्ति के पोषणार्थ तीन अङ्गों का निरूपण करते हैं। 'श्रीमत्कथा श्रवण चिन्तयैति'—कथा के श्रवण, कीर्तन और चिन्तन से वह सेवा बढ़ती है। 'कथा' शब्द का विशेषण 'श्रीमत्' देकर यह सूचित किया है कि कथा कहने वाला कोई पामर वा अजान नहीं हो। ऐसे के मुख से कथा श्रवण नहीं करनी। वैसा मर्त्य जिस भगवद्धाम में जाता है, वह सबसे उत्कृष्ट फल है। यह बताने के लिए 'दुस्तरकृतान्तजवापवर्ग' विशेषण दिया है, जिसका भावार्थ है कि जिस दुस्तर काल का वेग रोका नहीं जाता, वह भी जहाँ समाप्त हो जाता है। इसलिए कहा है कि 'मृत्युस्तावत् धावति यावदक्षरं'—काल अक्षर तक ही दौड़कर जा सकता है, आगे नहीं। इससे यह सूचित किया है कि भक्त तो व्यापि वैकुण्ठ में जाता है. यह फल (व्यापि वैकुण्ठ की प्राप्ति) ज्ञानियों को भी दुर्लभ है। यह बताने के लिए कहते हैं कि 'ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः'—पूर्व समय में भूपति अपने राज्य में रहकर राज्य की पालना रूप धर्म के अनुभव से परिपक्व होकर ज्ञान में स्थिति हो, इसलिए नगर आदि का त्याग कर कलाप आदि शान्त ग्रामों में ज्ञाननिष्ठ होकर रहते थे, पश्चात् भगवान् के माहात्म्य को जानकर उस गाँव का भी त्याग कर सर्व से गुप्त स्थान ऐसे वन में रहते थे। 'ग्राम' शब्द बहुत छोटे गाँव के अर्थ में जानना चाहिए। भगवान् के धाम की सबसे उत्कृष्टता इससे भी सिद्ध होती है कि जिसके श्रवण मात्र से अनुभवी राजा लोग अपने राज्य का स्थिर सुख एवं वैभव छोड़ वन में चले जाते हैं—अन्यथा नहीं जाते। जो स्थान ही जिनका पुरुषार्थ है, वे 'यदर्थाः' अर्थात् राजाओं का पुरुषार्थ अब भगवद्धाम-प्राप्ति ही रहा है ॥५०॥

कारिका—इत्येवं दशमस्कन्धे संक्षेपेणात्र लेशतः ।

अर्थो मयातियत्नेन स्वभावेन निरूपितः ॥१॥

अनेकयुक्तिसन्दर्भमालाकारेण योजितः ।
कृष्णपादाम्बुजे न्यस्ता वाक्पुष्पाञ्जलिरुज्ज्वला ।।२।।

कारिकार्थ—आचार्य श्री आज्ञा करते हैं कि इस प्रकार हमने अति संक्षेप में अनेक युक्तियों से दशम स्कन्ध के अर्थ की यह माला गूँथ कर भगवान् कृष्ण के चरणों में उत्तम वाक्पुष्पाञ्जलि अर्पण की है ।।१-२।।

कारिका—सिद्धान्ताः सकलागमाश्च वितता लोकेऽधुना सर्वतः
ते प्रायेण निरूपिताः सुबहुशो भक्त्यै मुकुन्दांघ्रये ।
विस्तारस्तु गुणाय कृष्णचरणे चित्त भवेद्विस्तृतं
तेनाहं हृदयस्थितेन हरिणा यावद्यथा रूपितम् ।।३।।

कारिकार्थ—इस समय में चारों ओर सिद्धान्त और सकल शास्त्र जो लिखे जा रहे हैं वे सब प्रायः भक्ति तथा मुकुन्द भगवान् की प्राप्ति के लिए ही हैं। इनका विस्तार तो भगवान् के चरणारविन्द में चित्त का प्रवरण हो, इस गुण के लिए ही है। इससे हृदय में स्थित हरि ने जैसी और जिस प्रकार प्रेरणा की, उसी तरह मैंने लिखा है ।।३।।

कारिका—अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः ।
निरुद्धानां तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते ।।१।।
हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भवसागरे ।
ये निरुद्धास्त एवात्र मोदमायान्त्यहर्निशम् ।।२।।

कारिकार्थ—आचार्य श्री इन श्लोकों में बताते हैं कि मैं निरोध से भगवान् में निरुद्ध हुआ हूँ, अतः निरोधास्थिति को प्राप्त मैं निरुद्धों की हरि में निरोध रूप स्थिति सदैव रहे इसलिए आपके पास निरोध का वर्णन करता हूँ ।।१।।

जिनका हरि ने त्याग किया है, वे भवसागर में डूब रहे हैं और जो भगव न् में निरुद्ध हैं, वे ही यहाँ दिन-रात हरि के आनन्द को पा रहे हैं ।।२।।

इति श्रीभागवतसुबोधिन्यां श्रीलक्ष्मणभट्टात्मजश्रीमद्वल्लभदीक्षितविरचितायां
दशमस्कन्धोत्तरार्धविवरणे एकचत्वारिंशाध्यायविवरणम् ।।४१।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराण दशम-स्कंध के ८७वें अध्याय (उत्तरार्ध के ४१वें अध्याय) की श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण विरचित श्री सुबोधिनी (संस्कृत-टीका) के
गुण-प्रकरण का षष्ठम अध्याय हिन्दी
अनुवाद सहित सम्पूर्ण ।

卐

हरि कथा माहात्म्य

राग सारंग

हरि हरि हरि सुमिरन करो। हरि चरणारविन्द में धरो॥
हरि की कथा होइ जब जहाँ। गङ्गाहू चलि आवे तहाँ॥
यमुना सिन्धु सरस्वती आवे। गोदावरी बिलम्बन लावे॥
सर्व तीर्थ को बास तहाँ। सूर हरि कथा होवे जहाँ॥

भगवत्सेवा फल

राग बिलावल

भजो गोपाल भूल जिनि जाउ। मानुष जन्म को यही है लाउ॥
गुरु सेवा करि भक्ति कमाई। कृपा भई तब मन में आई॥
यही देह सो सुमरो देवा। देह धारि करिये यह सेवा॥
सुनो सन्त सेवा की रीति। करै कृपा मन राखै प्रीति॥
उठ के प्रात गुरुन शिर नावै। प्रात समै श्री कृष्ण हि ध्यावै॥
जोई फल माँगे सोई पावै। हरि चरनन में जो चित लावै॥
जिन ठाकुर को दरशन कियो। जीवन जन्म सुफल करि लियो॥
जो ठाकुर की आरति करै। तीन लोक वाके पायन परै॥
जो ठाकुर को करे प्रनाम। विष्णु लोक तिनको निज धाम॥
जो कोई हरि को सुमरे नाम। ताके सफल पूरन है काम॥
जो ठाकुर को ध्यान लगावै। ध्रुव प्रहलाद की पदवी पावै॥
जिन हरि को चरणामृत लियो। विष्णु धाम अपनौं घर कियो॥
जो हरि आगे बाद्य बजावै। तीन लोक रजधानी पावै॥
जो जन हरि को ध्यान करावै। गरभ बास में कबहु न आवै॥
जो हरि को नित करे सिङ्गार। ताको पूरन ह्वै स्वोकार॥
जो दरपन ठाकुर हि दिखावै। चन्द्र सूर्य ताको शिर नावै॥
जो ठाकुर हि सु तुलसि चढावै। ताकी महिमा कहत न आवै॥
जो कीर्त्तन ठाकुर हि सुनावै। ताको ठाकुर निकट बुलावै॥
जो हरि मन्दिर में दीपक करै। अन्ध कूप में कबहुँ न परै॥
जो ठाकुर की सेज बिछावै। निज पद पास दास सो कहावै॥
पलना जो ठाकुर हि झुलावै। बैंकुण्ठ सुख अपने घर ल्यावै॥
जो ठाकुर हि झुलावै डोल। नित लीला में करे कलोल॥

उत्सव करि मन आरति करे। ता आधीन रहे श्री हरे ।।
जो ठाकुर को भोग धरावै। सदा परम नित आनन्द पावै ।।
जो पद दीन्ह् जशोदा माता। ता सुख को कछु कही न जाता ।।
ग्वालन सहित गोपाल जिमावै। सो ठाकुर को सखा कहावै ।।
जो ठाकुर को स्वाद करावै। सो ताको फल तब ही पावै ।।
गोवर्धन की लीला गावै। चरन कमल को तब ही पावै ।।
श्री जमुना जल करै जो पान। सो ठाकुर के रहे निधान ।।
जहाँ समाज वैष्णवो होवै। ताकी सङ्गति नित प्रति जोवै ।।
श्री भागवत सुने आनन्द करि। ताके हृदै बसे नित ही हरि ।।
जो ठाकुर को देह समरपै। उत्तम श्रेष्ठ जान के अरपै ।।
जिन हरि की गागरि भरि आनी। तिन बैकुण्ठ अपनी स्थिति ठानी ।।
जो ठाकुर को मन्दिर लेपे। माया ताको कबहु न लेपे ।।
जो ठाकुर को सीधो बीने। जितने तीरथ तितने कीने ।।
जो ठाकुर की माला पोवै। सोई परम भक्त नित होवै ।।
जो ठाकुर को चन्दन लावै। त्रिविध ताप सन्ताप मिटावै ।।
जो ठाकुर के पात्रन धोवै। सदा सर्वदा निर्मल होवै ।।
जो हरि कीर्त्तन सुख सो करे। मुक्ति चारहू पावन परै ।।
सेवा में जो आलस करै। कूकर ह्वै के फिर फिरि मरै ।।
मनसा जो सेवा आचरे। तब ही सेवा पूरी परे ।।
सेवा को आश्रय करि रहै। दुःख सुख वचन सबन को सहै ।।
जो सेवा में आलस लावै। सो जड़ जनम प्रेत को पावै ।।
वेद पुरानन में यों भाष्यो। सेवा रस व्रज बिथनी चाख्यो ।।
सेवा की यह अदभुत् रीति। श्री विट्ठलेस सों राखें प्रीति ।।
श्री आचार्य प्रभु प्रकट बनाई। कृपा भई तब मन में आई ।।
सेवा को फल कहो न जाई। सुख सुमरे श्री बल्लभराई ।।
सेवा को फल सेवा पावै। सूरदास प्रभु हृदै समावै ।।

॥ श्री हरिः ॥

अनुक्रमणिका

गुण प्रकरण—श्रीमद्भागवतानुसार अध्याय ८५ से ९० तक

श्लोक	पृष्ठ
अत्रानन्तः प्रतिविधिम्	२५४
अतीव कोमलौ तात	२७४
अत्र चोदाहरन्तीदम्	२४५
अत्र ते वर्णयिष्यामि	११३
अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ	२८
अथाजगाम वैकुण्ठम्	२७३
अथापतद्भिन्नशिराः	२६२
अथैकदात्मजौ प्राप्तौ	४
अद्य नो दर्शनम्	८६
अद्याहं भगवँल्लक्ष्म्याः	२७७
अपरिमिता ध्रुवाः	१७९
अपापयत्स्तनं प्रीता	४७
अर्जुनस्तीर्थयात्रायाम्	५६
असावहं ममैवैते	१८
अहं प्रजां वां भगवन्	२९३
अहं युयमसावार्य	२४
आकर्ण्येत्थं पितुर्वाक्यम्	२२
आत्मा ह्येकः स्वयं ज्योति	२५
आनर्तधन्व कुरुजाङ्गल	६८
आसन् मरीचेः षट पुत्रा	४४
आस्थितस्य परं धर्म	३५६
आहृते स्वागतम्	२७४
इत एतान् प्रणेष्यामो	४५
इति संभाष्य भगवान्	३०२
इति नव सूरयस्त्र्यधि	१३१
इती दृशान्यनेकानि	३१६
इति दृशेन भाव्वेन	३५१
इत्थं परस्य निजधर्मं	३७१
इत्थं भगवतश्चित्रै	२६१
इत्थं सारस्वता विप्रा	२८४
इत्यशेषसमाम्नाय	२२२
इत्यादिष्टस्तमसुर	२४८
इत्यादिष्टौ भगवता	३१४
इत्याद्यमृषिमानम्य	२२६
इत्युक्त्वा तान्समादाय	४६
इत्युषामन्त्रितो राज्ञा	८१
इत्येतद्ब्रह्मणः पुत्रा	२२१
इत्येतन्मुनितनया	२८५
इत्येतद्वर्णितं राजन्	२२७
इदमित्थमिति प्रायः	४१
इन्द्रियं त्विन्द्रियाणां त्वम्	१२
उदरमुपासते य	१४०
उद्यानो पवनाख्यायां	३२४
उपगीयमानो गन्धर्वैं	३२७
उचुर्मुकुन्दैकधियो	३३२
एकदागृहमानीय	५८
एकदाद्वारवत्यां तु	२८६
एकदा नारदो लोकान्	११४
एकैकस्यां दशदश	३५७
एतन्नानाविधं विश्वत्र	६
एतद्वेदितुमिच्छामः	२३४
एतेषामपि राजेन्द्र	३५९
एवं चेतर्हितद्वाक्यम्	२५८
एवं द्वितीयं विप्रर्षि	२९०
एवं ब्रुवाणे वैकुण्ठे	२७८
एवं भगवता पृष्टो	२५८

श्लोक	पृष्ठ	श्लोक	पृष्ठ
एवं भगवता राजन्	२८	ततोऽलब्धद्विजसुतो	३०१
एवं विश्रम्भितो विप्रः	२६६	ततो विकारा अभवन्	२३७
एवं वेदोदितं धर्मम्	३५५	ततस्त आसुतोषेभ्यो	२४३
एवं शपत्ति विप्रर्षौ	३००	तत्कथं नु भवान् कर्मं	२६४
एवं सञ्चोदितौ मात्रा	३४	तत्ते गतोस्म्यरणमद्य	२०
एवं स गुरुणादिष्टं	२२४	तत्र तत्र तमायान्तम्	६८
एवं स्वभक्तयो राजन्	१००	तत्र वै वार्षिकान् मासान	५८
क इह नु वेदबताबरजन्म	१५७	तत्राश्वाः शैब्यसुग्रीवमेघ	३०३
कान्तिस्तेजः प्रभा	६	तत्रोपविष्ट मृषिभिः	११५
कालविध्वस्तसत्त्वानाम्	३१	तथा तद्राष्ट्रपालोऽङ्ग	६६
किं वा चरितमस्माभि	३४१	तथा मे कुरुतं कामं	३३
किं स्विद ब्रह्मन् त्वन्निबासे	२६१	तदंभसा महाभाग	८३
कुररि विलपसि त्वम्	३३३	तदा महाकारुणिकः स	२४६
कृष्ण कृष्ण महायोगिन्	५	तदाह विप्रो विजयम्	२६८
कृष्णरामौ समाश्राव्य	२६	तदुक्तमित्युपाकर्ण्य	६२
कृष्णस्तु तत्स्तनविषञ्जित	३३०	तद् ब्रह्म परमं सूक्ष्मम्	२४२
कृष्णस्यासीद द्विजश्रेष्ठः	६३	तन्नः प्रसीद निरपेक्ष	४२
कृष्णस्येवं विहरतो	३३२	तन्निग्रहाय हरिणा	३६४
केचनोद्बद्धवैरेण	४१	तन्निशम्याथ मुनयो	२८०
को नु त्वच्चरणाम्भोज	७८	तमः सुघोरं ग्रहन	३०४
खं वायुर्ज्योतिरापो भूः	२७	तमाह चाङ्गालमलम्	२५०
गुणप्रवाह एतस्मिन्न	१७	तयोः प्रसन्नो भगवान्	६७
चराचरमिदं विश्वम्	६८	तयोः समानीय वरासनम्	३६
चरान्मृतसुताऽऽदाने	३२	तर्पणं प्राणनमपाम्	१०
जनियमतः सतोमृतिमु	१६०	तव परि ये चरन्त्य	१६६
जय जय जह्यजामजित	१२३	तस्मान्न सन्त्यमी भावा	१६
जयति जननिवासो	३६६	तस्माद् ब्रह्मऋषीनेतान्	६६
तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः	६१	तस्मिन् प्रविष्टावुपलभ्य	३४
तच्छ्रुत्वा भगवान्	२५२	तस्मिन् महाभीम	३०७
तं तथाव्यसनं दृष्ट्वा	२५५	तस्मै ह्यवोचद्भगवान्	११५
तं दृष्ट्वा देवकी देवी	४६	तस्य जिज्ञासया	२६६
तत उत्थाय भगवान्	२७४	तान् दृष्ट्वा बालकान्	४७
ततः कुमारः सञ्जातो	२६८	तान् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णो	३०३
ततः कैलासमगमत्स	२७२	ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरु	३२६
ततः प्रविष्टौ सलिलम्	३०६	तां परं समनुध्यायन्न	६०

श्लोक	पृष्ठ	श्लोक	पृष्ठ
तामर्जुन उपश्रुत्य	२९१	देवोपलब्धिमप्राप्य	२४८
तासां स्त्रीरत्नभूतानाम्	३५६	दैत्यदानवगन्धर्वाः	३९
तिस्रः कोट्य सहस्राणाम्	३६२	द्युपतय एव ते न ययु	२१७
तीर्थं चक्रे नृपो नं	३६६	द्वारेण चक्रानुपथेन	३०५
तुल्य श्रुततपः शीला	११८	द्विजात्मजामी युवयो	३१२
तृणपीठ वृषीष्वेताना	८२	धनदारात्मजापृक्ता	२९२
तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य	७१	धर्मः साक्षाद्यतो ज्ञानम्	२८१
ते नमस्कृत्य गोविन्दम्	४८	धिगर्जुन मृषावादम्	२९६
तेनासुरीमगन्योनिम्	४४	न घटत उद्भवः प्रकृति	१८५
तेनोपसृष्टः संत्रस्तः	२५३	न चलसि न वदस्युदा	३४६
तेभ्यः स्ववीक्षणं	६९	नटानां नर्तकीनां च	३३१
तेषा प्रमाणं भगवान्	३६४	न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं	२७०
तेषामुद्दामवीर्याणाम	३५८	न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो	२९९
त्वं चैतद्ब्रह्मदायाद	२२३	न ब्राह्मणान्मे दयितं	९६
त्वदवगमी न वेत्ति	२१५	नमस्तस्मै भगवते	२२४
त्वदनुपथं कुलाय	१५२	नमस्तुभ्यं भगवते	८०
त्वमकरणः स्वराड्	१७३	नमोनन्ताय वृहते	३८
त्वं यक्ष्मणा बलवतासि	३४०	नमोस्तु तेऽध्यात्मवि	९०
त्रिविधाकृतयस्तस्य	२८३	न यदिदमग्र आस	२०६
ददर्श तद्भोगसुखासनं	३०८	नश्वरेविश्वह भावेषु	१४
दर्शनं वां हि भूतानाम्	३९	नह्येतस्मिन् कुले	३६१
दर्शये द्विजसूनुंस्ते	३०२	नारदो वामदेवोत्रि	६७
दशास्यबाणयोस्तुष्टः	२४७	नाहं सङ्कर्षणो ब्रह्मन्त	२९५
दिनानि कतिचिद्भूमन्	८०	नित्य संकुलमार्गायाम्	३२४
दिशां त्वमवकाशोसि	११	निभृतमरुन्मनोक्ष	१५५
दुखगमात्मतत्त्व	१४९	निवृत्तेष्वश्व मेधेषु	२४०
दुर्योधनाय रामस्ताम्	५६	निशम्य वैष्णवं धाम	३१५
दुःप्रज्ञा अविदित्वैवम	९७	नृषु तव मायया	१८८
दृतय इव श्वसन्त्य	१३५	नेत्रे निमीलयसि नक्त	३३७
दृष्ट्वा तमुत्तमश्लोकं	७२	नैच्छत्त्वमस्युत्पथग	२७२
देवक्या उदरे जाता	४४	न्यमत्रवेतां दाशार्ह	७३
देवं स वव्रे पापीयान्	२५१	न्यरुणत्सूतिकागारं	२९७
देवासुर मनुष्येषु	२३३	न्यवर्तेतां स्वकं धाम	३१४
देवासुराहवहता	३६३	पीत्वामृतमयं तस्याः	४८
देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि	९४	पुनः स्वसत्रमाव्रज्य	२७९

श्लोक	पृष्ठ	श्लोक	पृष्ठ
पुनीहि सहलोकं माम्	२७६	य इदमनुशृणोति	५१
पुष्करो वेदबाहुश्च	३५९	य एवमव्याकृतशक्त्यु	२६५
पूर्णकामावपि युवाम्	३१३	यत्र नारायणः सा	२५४
प्रतिबाहुरभूत्तस्य	३६०	यत्र येन यतो यस्य	६
प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च	३५८	यथा शयानः पुरुषो	८७
प्रववर्षाखिलान्	३१७	यथा शयानं सम्राजम्	१२१
प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्ष	७५	यदि न समुद्धरन्ति	२१२
प्रसूतिकाल आसन्ने	२९६	यदि नः श्रवणायालम्	२५७
प्राणादीनां विश्वसृजाम्	७	यदि वस्तत्र विश्रमभो	२५९
प्राहिणोत्पारिबर्हाणि	६३	यदुवंशप्रसूतानां पुंसां	३६२
प्रियरावपदानि भषसे	३४४	यद्यसत्यं वचः शंभो	२६०
प्रोत्फुल्लोत्पलकल्हार	३२६	यस्यांशांशांशभागेन	३२
फलार्हणोशीर	८३	यस्याहमनुगृह्णामि	२४१
बुद्धीन्द्रियमनः प्राणान्	१०७	याः संपर्यचरन्प्रेम्णा	३५४
बृहदुपलब्धमेतदवय	१२७	यात्रामात्रं त्वहरह	६५
ब्रह्मद्विषः शठधियो	२८८	युवां न नः सुतौ साक्षा	१९
ब्रह्मन् ब्रह्मण्यनिर्देश्ये	१०५	योऽवतीर्य यदोर्वंशे	७९
ब्रह्मन् वेदितुमिच्छामः	५५	यो वै भारतवर्षेऽस्मिन्	११४
ब्रह्मस्तेनुग्रहार्थाय	९३	योऽस्त्योत्प्रेक्षक आदि	२२८
ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान्	९५	रथस्थो धनुरादय	६१
भगवांस्तदभिप्रेत्य	७३	राम रामाऽप्रमेयात्मन्	३०
भवान् हि सर्वभूतानामा	७७	रेमे षोडशसाहस्र	३२५
भुवि पुरुपुण्यतीर्थ	१९८	वचो वः सामवेतार्थम्	२३
भूतानामसि भूतादि	१३	ववन्द आत्मानमनन्त	३११
भो भो सदा निष्टनसे	३३९	वाचा मधुरया प्रीणन्नि	७५
मर्त्यस्तयातनुसमेधितया	३७२	विजितहृषीकवायुभि	१९१
महत्यां देव यात्रायाम्	६०	विजहार विगाह्याम्भो	३२७
महामणि व्रात किरीट	३०९	विप्रापत्यमचक्षाण	३०१
मावमंस्था मम ब्रह्मन्	२९५	विप्रो गृहीत्वा मृतकम्	२८८
मुक्तं गिरिशमभ्याह	२६४	विशुद्धसत्वधामन्यद्धाः	४०
मुनीनां न्यस्तदण्डानाम्	२८१	वृको नामासुरः पुत्रः	२४६
मुनीनां तद्वचः स्मृत्वा	४	शय्यासनाटनालाप	३६५
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि	२६३	शाकुनेय भवान् व्यक्तम्	२५९
मेखलाजिन दण्डाक्षौ	२५६	शाध्यस्मानीशितव्येश	४३
मेघ श्रीमंस्त्वमसि	३४२	शापप्रसादयोरीशा	२४४

श्लोक	पृष्ठ
शिवः शक्तियुतः शश्वन्त्रि	२३६
शुष्यद्ध्रदाः करशिताबत	३४७
शृण्वतां गृणतां शश्वद	८८
श्रुतदेवोऽच्युतं प्राप्तम्	८२
श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणाम्	३५३
श्रोतुमप्यसतां दूराज्जनकः	७५
श्वेतद्वीपं गतवति	११७
स आत्मन्युत्थितं मन्यु	२७१
स आदिदेश गिरिशमु	२४६
स आह भगवान्स्तस्मै	२४०
स इत्थं प्रभुणादिष्टः	६६
स उपस्पृश्य शुच्यंभो	२६७
स उवास विदेहेषु	६५
स कुटुम्बोऽवहन्मूर्ध्ना	७५
संकर्षणो वासुदेवः	२६४
संख्यानं यादवानां कः	३६३
स चापि रुक्मिणः पौत्रीं	३६०
सत इदमुत्थितं सदिति	२०१
स तद्वरपरीक्षार्थम्	२५३
स तर्कयामास कुतो ममाः	८४
सत्वं रजस्तम इति	१५
सत्वं यस्य प्रिया मूर्त्ति	२८३
सत्वं शाधि स्वभृत्यान्नः	६१
सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि	१६६
सप्तद्वीपान्सप्त सिन्धून्	३०३
सभाजितो भगवता	२२६
समर्हयामास स तौ	३६
स यदजया त्वजामनुश	२०६

श्लोक	पृष्ठ
स यदा वितथोद्योगोः	२४२
सरस्वत्यास्तटे राजन्	२६८
स रुक्मिणो दुहितरमु	३५६
सापितं चकमे वीक्ष्य	६०
सिच्य मानोऽच्युत स्ताभिः	३२८
सुखंस्वपुर्यां निवसन्द्वा	३२२
सुनन्दनन्द प्रमुखैः	३१०
सूती गृहे ननु जगाद	२१
सूप विष्टान कृतातिथ्यान्	८५
सैषा ह्युपनिषद्ब्राह्मी	११२
सोऽपश्यत्तत्र महती	५६
स्मरोद्गीथः परिष्वङ्गः	४६
स्वकृतपुरेष्वमोष्व	१४७
स्वकृतविचित्रयोनिषु	१४२
स्वजनसुतात्मदारधन	१६५
स्ववचस्तदृतं कर्तुम्	७८
स्वसृष्टमि दमापीय	१२०
स्वानुग्रहाय संप्राप्तम्	७२
स्वायंभुव ब्रह्मसत्रम्	११६
स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिः	३२३
स्थिरचरजातयः स्युः	१७६
हतः को नु महत्स्वीशः	२६४
हत्वा नृपानधर्मिष्ठान्	३१७
हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्	२३६
हंस स्वागतमास्यताम्	३४८
हिंसाविहारं नृपतिम्	२८६
हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः	८६

॥ श्री हरिः ॥

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	अशुद्ध
११	२५	महानककशो	महानवकाशो
१२	२	अबकाश	आकाश
१६	३२	जान्ति ।	जानन्ति तान्निन्दति
२०	२३	आतबन्धो	आर्तबन्धो
२४	३	प्रकारमुक्त्या	प्रकारमुक्त्वा
३२	८	रू	रूप
३३	३८	निरास	निराश
४२	४	याग	योग
४३	६	सर्वे सरवा	सर्वे सर्वा
४६	१५	घणी	घृणी
६१	१	अपण	अर्पण
६१	१७	पूर्वर्णव	पूर्वर्णव
७०	२२	सर्वदव	सर्व दैव
७१	३२	भगवदर्पण	भगवदर्शन
८०	२६	दिनानि चिद्भूमिन्निति	दिनानि कति चिद्भूमन्तिति
८५	२	साधन सर्मत्तिः	साधन सम्पतिः
९५	२८	तुष्ट्या	तुष्टवे
८९	३२	य सर्वं ही	ये सर्व ही
१००	१५	उषिवादिश्य	उषित्वादिश्य
१०८	८	सेत्म्यति	सेत्स्यति
११३	५	अनुपति	अनुपपति
११३	१५	लारायणान्वितम्	नारायणान्वितम्
१२७	४६	उत ज्ञन्ते	उत्पधन्ते
१२९	२०	तिका	मृतिका
१३२	४०	अहंकार	अहंकारी
१३९	६	प्राचुर्थ	प्राचुर्य
१४४	१२	विलक्षणसेषु	विलक्षण रसेषु
१४५	१२	भेव	भेद
१५०	२५	ज्ञतृमशस्यः	ज्ञातुमशव्य
१५३	१९	काय	कार्य
१५३	४४	न नश्यतीति	नश्यतीति
१५७	२४	प्रशाश्रवणः	प्रशंसाश्रवणः
१७१	११	वकुण्ठ	वैकुण्ठ
१७८	१४	पूवका	पूर्विका
१८५	५	मतदुष्टया	मतदुष्टतया
२३२	१८	श्री कृण	श्री कृष्ण
२४८	१६	होगा	होमा
२५०	१७	वैरा	वैसा
२६१	१	अङ्गकार	अङ्गीकार
२७१	३१	जज	जल
२७५	२२	यह	वह
२७७	१०	ररते	करते
२८६	११	वदान	वरदान
२९२	२५	भागते	भोगते
३०३	११	घार	घोर
३१५	२०	श्र कृष्ण	श्री कृष्ण
३१९	५	में	मैं
३४४	१५	गजना	गर्जना
३४८	४	ता	तो
३५२	१	भगवन्	भगवान्
३७४	२१	भगवन्	भगवान्

॥ श्री हरिः ॥

परिशिष्ट

पुष्टिमार्गीय तीन ऋण

सनातन धर्म के ग्रन्थों में, पितृ ऋषि एवं देव इस प्रकार तीन ऋणों का उल्लेख है, जिन से मुक्त होना प्रत्येक अनुयायी का कर्त्तव्य है। पितृ निमित्त कर्म यथा श्राद्ध, तर्पण, दानादि से पितृ-ऋण, आर्ष वचन, उपदेश, सिद्धान्तों एवं आज्ञाओं के पालन से ऋषि ऋण तथा यज्ञ, हवन, एवं देव निमित्त अन्य कर्म करने से देव ऋण से मुक्त होने का विधान है।

पुष्टि मार्ग भी इन तीन ऋणों को अवश्य स्वीकार करता है पर इन से मुक्त होने के उपरोक्त उपायों से अतिरिक्त बताता है। परिवार को उचित प्रेरणा देकर भगवत् सेवा में लगाने से पितृ ऋण से, श्री मद्वल्लभाचार्य जो ऋषि हैं, उनके सिद्धान्तों के साहित्य का अध्यापन, अध्ययन, मुद्रण, प्रकाशन एवं प्रचारार्थ तनुजा, वित्तजा सेवा से ऋषि ऋण एवं स्वयं स्व-मार्गीय मेंड मर्यादा से भगवत् सेवा कर देव ऋण से निवृत्त होना दीक्षित पुष्टि मार्गीय वैष्णव के लिये परमावश्यक है।

इस संस्था की गत १५ वर्षों से जो महानुभाव ऋषि-ऋण से मुक्त होने की दिशा में तनुजा वित्तजा सेवा द्वारा प्रयत्नशील हैं उनका संक्षिप्त परिचय, संस्थाध्यक्ष श्रीमद् गोस्वामि श्री व्रज भूषण लालजी महाराज की आज्ञा से अपनी जानकारी के अनुसार देने के प्रयास में भूल हो जाना स्वभाविक ही है, क्योंकि अपने विषय में कुछ कहना आत्म-श्लाधा मान कर निवेदन करने पर भी उन्होंने अपना परिचय देना उचित नहीं समझा अतः जो कुछ कमी वेशी लेख में हो उसके लिए निज किंकर समझ वे क्षमा करेंगे।

विनीत :

नन्ददास (रामचन्द्र)

संक्षिप्त परिचय

श्रीमान् प्रीतमलालजी गोस्वामी महोदय, कानपुर—

श्रीमद्विट्ठलेश प्रभु चरण के कृपा पात्र अष्टमलालजी के आप वंशज हैं देश विभाजन के बाद आप अमृतसर में विराजे उस समय मुझे आप के दर्शन एवं आपसे सम्भाषण का सौभाग्य प्राप्त हुवा। पुष्टिमार्ग के आप मर्मज्ञ विद्वान हैं। वहां से पधार कर कृष्ण नगर कानपुर में विराजे। यहां पर स्नेह पूर्वक भगवत्सेवा, पुष्टि मार्गीय साहित्य का मनन पूर्वक अध्ययन, समाज सेवा से आप अपने आपको पवित्र होना मानते हैं। आप बी. ए. एल. एल. बी. होने पर भी निरभिमान स्वभाव से "विद्या विनय सम्पन्न" की उक्ति को चरितार्थ कर रहे हैं। जो भी साम्प्रदायिक सेवा होती है आप उसे स्वयं सम्पादन कर अन्य वैष्णवों को भी प्रेरित कर उनसे सेवा करवा कर उन्हें पवित्र करते हैं। पुष्टिमार्गीय प्रचार में आपकी रुचि अत्यधिक है। पुष्टिमार्गीय हवेलियों में अष्ट छाप-गेय कीर्तन प्राचीन परम्परा के सर्व

साधारण में प्रचार की आप की अभिलाषा है। प्रभु कृपा से वह भी पूर्ण होगी। इस संस्था के आप स्वयं सदस्य बने एवं कुछ सदस्य आपने बनाए। ग्रन्थ वितरण की उत्तमोत्तम व्यवस्था आपने की है। आपके सुपुत्र उच्च शिक्षित हैं और आपकी सेवा-रत हैं। आपकी अनमोल सेवाओं के लिये यह संस्था आप का आभार सादर स्वीकार करती है।

कविरत्न आर. के. भट्ट एम. ए. एल. एल. बी., बम्बई

महाराजा जयपुर के राज वैद्य श्रीमान् कलाधरजी भट्ट के आप सुपुत्र हैं बाल्यावस्था से ही कवित्व शक्ति प्रभु कृपासे आपको प्राप्त है। एल. एल. बी. की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए तब हिन्दू-ला में आपने विशिष्ट स्थान प्राप्त किया, अतः अहमदाबाद में ला-कालेज में आप लेकचरार नियुक्त कर दिये गए। कुशाग्र बुद्धि के कारण कुछ समय बाद कालेज-सेवा छोड़ बम्बई में शेयर-व्यापार में प्रवेश किया। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान होने से बम्बई में आयुर्वेद कालेज में अवेतनिक अध्यापन की निष्काम सेवा भी आप करते हैं। कई कम्पनियों के वैतनिक डायरेक्टर जब नियुक्त हो गए तब शेयर-व्यवसाय त्याग कर उदयपुर में एक उद्योग प्रारम्भ कर दिया, जो संस्कृत चिकित्सा के अतिरिक्त है। आपकी धर्म पत्नी श्रीमती चन्द्रकांता महोदया एम. ए. संस्कृत एवं वल्लभवेदांत की विदुषी होने के साथ साथ भगवत्सेवा परायण है उनसे भी साहित्य सेवा में आपको सहयोग प्राप्त है। आप संस्कृत व हिन्दी दोनों भाषाओं के कुशल कवि ही नहीं, एक प्रतिभा-सम्पन्न लेखक भी हैं। आप की भाषा ओज, प्रवाह एवं माधुर्य रस पूर्ण होती है। "श्री मद्वल्लभाचार्य के दार्शनिक-आचार की परम्परा" नामक ग्रन्थ रचना कर सम्प्रदाय में आपने अपूर्व यश प्राप्त किया। हाल ही में, श्रीमद्वल्लभाचार्य-चरण रचित 'श्री यमुनाष्टक' की सुन्दर व्याख्या हिन्दी भाषा में प्रकाशित की है प्रत्येक श्लोक के भावानुकूल श्री यमुनाजी के परमाकर्षक रेखा-चित्र नयन-रम्य सुरुचिपूर्ण दिये हैं तथा प्रत्येक श्लोक का स्वरचित हिन्दी पद्य में रूपान्तर श्री भट्टजी महोदय की विचक्षण काव्य प्रतिभा का परिचायक है। श्री भट्टजी के पास निज रचित संस्कृत व हिन्दी की विपुल मात्रा में अप्रकाशित काव्य सामग्री है। नाथ-द्वारा धर्म संकट उपस्थित होने पर तीन वर्षों तक तन-मन-धन से आपने अनवंचनीय सेवा की। सम्प्रति आप नाथद्वारा मंदिर मंडल के सदस्य हैं। आप ने श्री सुबोधिनी टीका की महत्व पूर्ण पंक्तियों से अपने प्रथम ग्रंथ को समलकृत कर पाठकों के हृदय में सुबोधिनी के हिन्दी अनुवाद अध्ययन का परमोत्साह प्रकट किया, जिससे इस प्रकाशन को पर्याप्त मात्रा में बल मिला अतः आपका यह संस्था सादर आभार स्वीकार करते हुए आपकी सेवा में श्रद्धा पूर्वक धन्यवादापर्ण निवेदन करती है।

प. भ. श्री जेठालालजी गोवर्धनदासजी शाह, एम.ए.—अहमदाबाद

आपका जन्म १० अक्टोबर सन् १८९४ में गुजरात प्रांत में हुवा उचित लालन-पालन व विद्याध्ययन कर सन् १९२२ में बम्बई विश्व विद्यालय से संस्कृत एवं गुजराती भाषा में एम. ए. परीक्षा में आप उत्तीर्ण हुए तब से ही अध्यापन का कार्य कर कालेज के प्रिंसीपल पद से आपने अवकाश प्राप्त किया। आपकी प्रशस्त अध्यापन पद्धति से प्रभावित हो कर विश्व विद्यालय अपनी सीनेट एवं कोंसिल की सदस्यता के लिये आपका मनोनयन करता रहा। विश्व के दर्शनशास्त्र के आप विशेषज्ञ हैं। आपने दर्शन शास्त्र व पुष्टि मार्ग पर अंग्रेजी व गुजराती भाषा में लगभग ५०

ग्रन्थों की रचना करी है । मासिक पत्रों में आपके लेख आते रहते है जिससे आपका हिन्दू समाज में बहुत सम्मान है । छः वर्ष पूर्व आपने "श्री वल्लभाचार्य उनका दर्शन शास्त्र एवं धर्म" के ५०० पृष्ठों में वृहद् ग्रन्थ की अंग्रेजी भाषा में रचना कर देश विदेशों में भी आपने ख्याति प्राप्त की है । पुष्टिमार्गीय लेखकों, कवियों तथा प्रकाशकों की कृतियों की असीम प्रशंसाकर उन्हें अधिक कार्य करने के लिये प्रोत्साहित करने का आप का सहज स्वभाव है । समय समय पर आपने मार्गदर्शन एवं श्री सुबोधिनी के सहायक ग्रन्थकार महोदयों के जीवन वृत प्रेषण से इस संस्था की श्लाघनीय सेवा की है, जिसके लिये आपका सादर आभार स्वीकार करते हुए आप को धन्यवादपर्ण करते हैं ।

प०भ० श्री मोहनलालजी शर्मा--

आप गुनसारा ग्राम (व्रज) के निवासी हैं । पूज्य पिता श्री मेघश्यामजी का आपकी बाल्यावस्था में ही स्वर्गवास होने से आपके पितृव्य (काकाजी) गोकुल स्वामी, प्रसिद्ध संगीतज्ञ, रास मण्डली के स्वामी के संरक्षण में आपका विद्याध्ययन हुवा । बाल्यावस्था से ही आपकी स्मरण शक्ति अच्छी होने एवं भगवत्कृपा से आपकी धार्मिक साहित्यावलोकन में रुचि होने से आपको महाभारत, रामायण, श्रीमद्भगवद् गीता, श्रीमद्भागवत, पुष्टिमार्गीय आकर ग्रन्थ जैसे श्री सुबोधिनीजी, तत्व दीप निबंध, षोडश ग्रन्थ, वार्ताओं, पद-कीर्तनों इत्यादि के ग्रन्थों का सुन्दर ज्ञान है । कुशाग्र बुद्धि के कारण किसी भी आध्यात्मिक विषय को समझाने में आप निपुण हैं । साम्प्रदायिक तनुजा-वित्तजा सेवा में भी आप तत्पर रहते हैं । इस संस्था की स्थापना के पश्चात् आप सदस्य बने और श्री सुबोधिनीजी के विविध प्रसंग सुनाकर इस संस्था के सदस्य बनाने में आप सहयोग देते रहते हैं । इस दास को आपका सत्संग काफी समय तक रहा, जिससे पुष्टिमार्ग में रुचि बढ़ी और इस मार्ग की कुछ जानकारी हुई; क्योंकि यह तो महासागर है । आप रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के कोष-विभाग से अवकाश प्राप्तकर आगरा में ही निवास करते हैं । आपकी सेवा में चार सुपुत्र हैं. जिनको आपकी कृपा से पुष्टिमार्ग की पर्याप्त जानकारी है और वे सभी भगवत्सेवा परायण हैं । आपकी चिर-स्मरणीय सेवा के लिए संस्था आपका आभार सादर स्वीकार करती है ।

श्री राधेश्यामजी रस्तोगी एम. ए. एल. एल. बी. —

लाला श्री रघुवरदयालजी लखनऊ निवासी पुष्टिमार्गीय आदर्श वैष्णव थे, आपके सुपुत्र श्री राधेश्यामजी का जन्म लखनऊ में १५ अक्टूबर १९०६ में हुआ था । बाल्यावस्था से ही मेधावी एव गम्भीर प्रकृति के होनहार बालक थे । आपका विद्याध्ययन सर्वोत्तम शिक्षा सस्थानों में लखनऊ में ही हुआ । बी.ए. की परीक्षा में लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए । एम.ए. (इंगलिश) में विश्वविद्यालय में सर्वोच्च स्थान सन् १९२७ में प्राप्त किया, जिसके फलस्वरूप आपकी अंग्रेजी भाषा के लेक्चरार के पद पर लखनऊ विश्वविद्यालय में नियुक्ति हो गई और ३५ वर्षों तक अनवरत अध्यापन कार्य करने के बाद 'रीडर' के रूप में में आपने स्वेच्छा से अवकाशग्रहण कर आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश किया । वेद शास्त्र एवं दार्शनिक साहित्य के अनुवादों का अध्ययन कर पुष्टिमार्गीय दर्शन शुद्धाद्वैत का विशेष रूप से परिज्ञान प्राप्त करते हुए भक्तिमार्ग साहित्य का अवलोकन कर रहे हैं ।

रस्तौगीजी अंग्रेजी के अतिरिक्त फारसी व उर्दू भाषा के भी विद्वान् लेखक एवं कवि हैं। आपने उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी में भगवद्भक्ति सम्बन्धी पुस्तकों की रचना की है। पत्र-पत्रिकाओं में इन सभी भाषाओं में आपकी कविताएँ तथा लेख छपते रहते हैं। इनकी कृतियों से पाठक समाज उपकृत है।

श्री रस्तौगीजी एक सहृदय व्यक्ति हैं, वे अपने धन का सदुपयोग परमार्थ के कार्यों में मानते हैं। हिन्दी भाषा-भाषी जनों के लिए संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद तथा रास पञ्चाध्यायी श्री सुबोधिनी का हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन कराया है। आप अ. भा. पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद् के एक कर्मठ आजीवन सदस्य हैं और इसके साथ-साथ आप 'वल्लभ शोध संस्थान' के एक सक्रिय कार्यकर्त्ता भी हैं। आप स्वयं इस मण्डल की आर्थिक सेवा करते रहते हैं तथा ११ अन्य सदस्य इस संस्था के बनाकर प्रारम्भ से अब तक साहित्य वितरण का कार्य करते रहे हैं, इस प्रशंसनीय सेवा के लिए यह संस्था आपको हार्दिक धन्यवाद देने के साथ-साथ आपका सादर आभार भी स्वीकार करती है।

प. भ. सेठ श्री साकरलाल बाला भाई महोदय, अहमदाबाद–

आप अहमदाबाद महानगर के मिल मालिक प्रतिष्ठित जन-कल्याणोपकारी परम भगवदीय थे। आपका दैन्ययुक्त स्नेहपूर्ण व्यवहार वैष्णव मात्र से था। कुशाग्र बुद्धि, दूरदर्शिता, तीव्र स्मरण शक्ति एवं दीर्घकालीन कार्यानुभव एवं सक्रियता के कारण लोक एवं साम्प्रदायिक सेवा निमित्त अनेक समितियों एवं प्रन्यासों के आप सदस्य थे। अखिल भारतीय पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद् की स्थापना से ही आपका निर्वाचन अनवरत उपाध्यक्ष पद के लिए होता रहा, जो पद केवल गोस्वामी आचार्य महानुभावों के लिए ही सुरक्षित था। उस पद का दायित्व आपने अपनी सभाओं में उपस्थिति से उचित मार्गदर्शन देकर कई अवसरों पर आर्थिक सेवा से भी सुचारु रूप से निभाया। सेठ साहब स्पष्टवक्ता थे और मिथ्या आश्वासन देने के विरुद्ध थे, केवल वाक्पटुता से ही उनसे कुछ आर्थिक सेवा लेना कठिन था, कार्य देखकर उदारतापूर्ण सहायता देते थे।

प्रथम पुष्प का प्रकाशन आपको भेजा, कुछ ही समय बाद आपने रु. १००१/- का संस्था को चेक भेज दिया। इसके बाद भी रु. ५००/- का एक चेक भेजा। ग्यारह पुष्पों (१० पुस्तकों) का प्रकाशन आपके पास गया, परन्तु उसके बाद मैं आपसे मिल नहीं पाया। गत जनवरी में आपके गोलोक गमन के समाचारों से हृदय को बड़ा दुःख हुआ। इस संस्था के प्रति आपकी कितनी शुभभावना का पता तब चला, जब २० नवम्बर १९७५ को अचानक एक चेक रु. ३५००/- का इस संस्था के नाम का प्राप्त हुवा साथ के पत्र में समाचार थे कि स्व. सेठ साकरलालजी के आदेशानुसार आपकी संस्था के लिए बाई रुक्मणी वकील चिमनलाल कपूरचन्द वैष्णव मण्डान ट्रस्ट की ओर से भेंट भेजी जा रही है। स्वेच्छा से की गई इस आर्थिक सेवा के लिए संस्था आपका आभार सादर स्वीकार करती हैं। प्रभु को प्रार्थना है कि आपको अपने चरणकमलों का आश्रय देवें।

प. भ. श्री रणछोड़दासजी मून्धड़ा, कलकत्ता–

आप प. भ. श्री जमुनादासजी मून्धड़ा के सुपुत्र हैं, जिनका विशद् वर्णन इस ग्रन्थमाला के द्वितीय पुष्प में है। आप कलकत्ते में कई वर्षों से व्यवसाय करते हैं। दिन का अधिकांश भाग आपका भगवत्सेवा कीर्तनादि में ही व्यतीत होता है। आपकी धर्मपत्नी प. भ. सुन्दर बाई का सेवा में पूर्ण सहयोग प्राप्त था, उनके हरिशरण होने से आपको असुविधा होने पर भी आप उसे हरि-इच्छा मान भगवत्सेवा में तल्लीन रहते हैं। आपका स्वभाव गम्भीर, निष्प्रपञ्च और मित-भाषी है। इस संस्था के

आप सहर्ष सदस्य बने तथा प्रारम्भ से ही इतने बड़े नगर में संस्था के ग्रन्थ-वितरण एवं नये सदस्य बनाने की प. भ. सुन्दर बाई के सहयोग से अपूव सेवा सन् १९७३ तक की उस समय भी अस्वस्थ होने से आपको यह कार्य वहीं पूर्ण करना पड़ा। संस्था इस सेवा के लिए आपका आभार स्वीकार करते हुए आपको धन्यवादार्पण करती हैं।

प. भ. बाबू श्री जुगलकिशोरजी वर्मन्, कलकत्ता—

आप कलकत्ता नगर के प. भ. श्री दामोदरदासजी वर्मन् जो राजा बाबूजी के शुभ नाम से सुविख्यात थे, उनके पौत्र हैं। उन महानुभाव ने अपने सेव्य स्वरूप श्री साँवलियालाल की सेवा अतिशय स्नेह व निष्ठा से कर वैष्णव समाज के सन्मुख एक आदर्श-वैष्णव का उदाहरण प्रस्तुत किया। अनोसर में भगवद्-वार्ता करते, जिसमें साम्प्रदायिक विद्वान् तथा रसिक वैष्णवों की उपस्थिति से श्रोतागण को अलभ्य लाभ मिलता था। उनकी भगवत्सेवा की रीति नेग मेंड मर्यादा, मुखिया, भीतरिया, कई टहलूये, कीर्तनकार आज भी विद्यमान हैं। बाबू श्री जुगलकिशोरजी दोनों प्रकार की सेवा—नाम-सेवा व स्वरूप-सेवा से पवित्र होने का सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं। नियमपूर्वक वार्ता का कार्यक्रम रहता है, जिसमें सरस वार्ता सुनाने में आपकी रुचि रहती है। बाबू श्री रणछोड़दासजी का इस सस्था का कार्यभार आपने सम्हाला है। थोड़े-से समय में आपको ४ ग्रन्थों का वितरण एक सौ से भी ऊपर सदस्यों में करने के अतिरिक्त आंशिक आर्थिक सेवा भी आपको एकत्रित करनी पड़ी, जो कष्ट साध्य है तथापि आप सहर्ष कार्य करने में तत्पर हैं। आपकी इस निष्काम सेवा के लिए आपको सादर धन्यवाद देते हुए यह संस्था आपका आभार स्वीकार करती है।

प. भ. चाँदबाई तापड़िया, कलकत्ता—

कलकत्ता नगर के जन कल्याण सेवारत रामानुज सम्प्रदाय के एक प्रतिष्ठित वैष्णव स्व. सेठ श्रीमान् बेजनाथजी तापडिया की आप धर्मपत्नी हैं तथापि आपको पू. पा. गो. श्री वल्लभलालजी महाराज, कामवन से ब्रह्म-सम्बन्ध दीक्षा प्राप्त है। आपके चिरञ्जीव सुपुत्र रमेशचन्द्रजी एवं सुरेशचन्द्रजी तथा तीन कन्याओं, पुत्र वधुओं सबको ही पुष्टिमार्गीय दीक्षा आपने दिलाई है। आपका स्वभाव सुमधुर दैन्य युक्त एवं परम निष्ठावान है। हरि गुरु वैष्णव सेवा परायण होते हुए भी निरभिमान हैं। इस संस्था की आप सदस्य बनी एव अपने बन्धु-बांधवों को भी सदस्य बनाने में पूर्ण सहयोग दे रही हैं। सांप्रदायिक सभी कार्यों में सहयोग देना आपका एक सहज स्वभाव है। घर में बालकृष्ण प्रभु की सेवा बड़े स्नेह से कर पवित्र हो रही हैं। इस सस्था की जो आर्थिक सेवा आप कर रही हैं, उसके लिए संस्था आपका आभार स्वीकार करते हुए आपको धन्यवाद देती है।

प. भ. उद्धवदासजी एवं अ. सौ. प. भ. काशीबाई मून्धड़ा, कानपुर—

प. भ. श्री उद्धवदासजी गो. वा. प. भ. श्री जमुनादासजी मून्धड़ा बीकानेर निवासी के लघुतम सुपुत्र हैं। सुविख्यात श्री नरसिंह सहाय मदनगोपाल इलैक्ट्रिक कम्पनी के आप भागीदार हैं। पुष्टिमार्गीय सेवा पद्धति के अनुसार पक्की मर्याद लेकर सपरिवार प्रभु की सेवा से पवित्र होते हैं। आपने अपने पूज्य पिताजी से दाय-भाग में मधुर कण्ठ एवं पद-कीर्तन गायन कला विशेष में प्राप्त की है। हृदय की उदारता के कारण साम्प्रदायिक एवं सार्वजनिक कामों में तनुजा-वित्तजा सेवा से बम्बई में आपने बहुत ख्याति प्राप्त की है।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती अ. सौ. काशीबाई लौकिक कार्यों में अनासक्त रहकर प्रभु सेवा एवं जप, पाठ इत्यादि सुरुचिपूर्ण कर जीवन का लाभ ले रही है । यह दम्पत्ति हरिगुरु वैष्णव सेवा परायण है । श्री सुबोधिनी प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ होने के पश्चात् से ही यह सौभाग्यशाली युगल, आर्थिक सेवा करने एवं अन्य वैष्णव महानुभावों को प्रेरणा देकर इस मण्डल के सदस्य बनाने में सदैव तत्पर रहते हैं । केवल अपने परिवार से ही रु. १०,०००/– की सेवा कराने तथा बम्बई नगर में लगभग ५० सदस्य बनाने का श्रेय भी इस दम्पत्ति को ही है । दोनों ने पृथक्-पृथक् एक-एक सहस्र रुपये के दो विशिष्ट आजीवन सदस्य बनाने में भी सफलता प्राप्त की है, यह सब कुछ महाप्रभुजी की कृपा है । प्रभु से प्रार्थना है कि इस युगल को सपरिवार चिरायु करें, जिससे सम्प्रदाय की अधिक सेवा इनसे बने । यह संस्था आप दोनों महानुभावों का सादर आभार स्वीकार कर आप लोगों को धन्यवादार्पण करती है ।

प.भ. सेठ किशनचन्द्रजी भाटिया एवं अं.सौ. प.भ. प्रेमाबाई, कृष्णनगर (कानपुर)—

पूर्व में डेरा इस्माइलखाँ नगर के आप प्रतिष्ठित नागरिक थे । परन्तु देश विभाजन होने पर आपने कानपुर में वस्त्र व्यवसाय प्रारम्भ किया, प्रभु कृपा से आपकी कई दुकानें कानपुर में हैं । कई वर्षों से सेठजी पुष्टिमार्गीय नाम सेवा में तल्लीन हैं । धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन का आपको व्यसन ही है । जन सेवा में अग्रगण्य हैं । इन सेठ साहब की धर्मपत्नी मितभाषी, हरिगुरु वैष्णव सेवा परायण अ.सौ. प्रेमाबाई हैं । घर में प्रभु स्वरूप सेवा से पवित्र होते हुए नाम सेवा स्वयं भी करती हैं एवं अन्य महिलाओं को भी प्रेरित कर उन्हें इस शुभ कार्य में लगाती हैं । कृष्णनगर में अपने सत्प्रयास एवं पूज्य पतिदेव के पूर्ण सहयोग से एक सत्संग भवन निर्माण करवाया है, जहाँ नियमित रूप से नित्य प्रति सन्ध्या को पुष्टिमार्गीय ग्रन्थों का वाचन एव पद-कीर्तन गायन होता है । यहाँ पधारे हुए प्रवर गोस्वामी चरण एवं वैष्णव महानुभावों की सेवा भी सत्संग मण्डल में होती है । सभी साम्प्रदायिक कार्य-कलापों में प.भ. प्रेमाबाई का पदैन्य तनुजा-वित्तजा सेवा करने का सहज स्वभाव ही है । इस मण्डल के आपने नये सदस्य बनाए तथा स्वयं ने भी रु. १००१/– की सराहनीय सेवा की । इस संस्था की आप जो प्रशंसनीय सेवा कर रही हैं, उसके लिए संस्था आपका सादर आभार स्वीकार करते हुए आपको धन्यवाद देती हैं ।

श्रीमती रामीबाई अग्रवाल, ग्वालियर—

आपका विवाह ग्वालियर के प्रतिष्ठित वस्त्र व्यवसायी फर्म छेदीलाल फूलचन्द के अधिष्ठाता सेठ श्रीमान् फूलचन्दजी के साथ आपकी १२ वर्ष की अवस्था में हुआ, परन्तु दाम्पत्य जीवन पतिदेव के एक वर्ष बाद ही स्वर्गवास होने से समाप्त हो गया । उस दुःखद समय में भगवत्कृपा से इसी परिवार के सदस्य सेठ श्री नारायणदासजी के सत्संग से कथा, वार्ता, पठन में दिनों-दिन आपकी रुचि बढ़ने लगी २९ वर्ष की अवस्था में श्रीजी बावों के सान्निध्य में पू. पा. गो. तिलकायत गोविन्दलालजी महाराज द्वारा नाम निवेदन हुआ तत्पश्चात् आपकी भगवत्सेवा में रुचि उत्तरोत्तर बढती गई । हृदय की उदारता और भगवन्निष्ठा के कारण साम्प्रदायिक एवं सार्वजनिक कार्यों में जैसे धर्मशाला, मातृसेवा केन्द्र निर्माणादि के साथ-साथ उनके नाम से अनेक प्रन्यास जैसे महिला-शिशु कल्याण प्रन्यास, जन सेवा प्रन्यास इत्यादि निर्मित हुए, जिससे लगातार सेवा हो रही है । इसके अतिरिक्त समय-समय पर अन्य जन कल्याण कार्यों में सहायता एवं सुन्दर अनुदान भी देती रहती हैं । श्री सुबोधिनी प्रकाशन मण्डल को रु. १००१/–

भेंट कर स्वयं विशिष्ट आजीवन सदस्य बनकर अन्य लगभग ३० सदस्य बनाकर उनमें सुबोधिनी साहित्य के वितरण का प्रशंसनीय कार्य सम्पादन आपके द्वारा हो रहा है। आपके दयालु, उदार एवं सौजन्यतापूर्ण व्यवहार से प्रेरित होकर अनेक संस्थाओं ने आपका आभार मुक्तकण्ठ से सम्मान-पत्रों द्वारा स्वीकार किया है। आपकी अवस्था लगभग ६५ वर्ष की है तथापि आपकी धार्मिक एवं सार्वजनिक कार्य करने में उत्साहपूर्ण क्रिया शक्ति नवीन है। प्रभु आपको चिरायु करें। आप जो इस संस्था की सेवा कर रही हैं, उसके लिए आपका आभार सादर स्वीकार करते हुए आपको धन्यवाद देते हैं।

श्री वृजमोहनदासजी विजय, शुजालपुर मण्डी (म०प्र०)—

आपका जन्म खुजनेर जिला राजगढ़ मध्यप्रदेश में एक प्रतिष्ठित विजयवर्गीय वैष्णव परिवार के सदस्य सेठ श्री गोपीलालजी के यहाँ हुआ। आपकी पूज्य माताजी श्रीमती गोपीबाई एवं भूवाजी श्रीमती यशोदाबाई भगवत्सेवा बड़े स्नेह से करती थीं, जिसका प्रभाव इस बालक पर भी पड़ा कि इनकी भगवत्सेवा में रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती गई। सौजन्यता, परोपकारिता के विशिष्ठ गुण नवयुवक विद्यार्थी में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगे, इससे ये लोकप्रिय हो गए। प्राचीन व्यर्थ के रूढ़िवाद से इनको अरुचि होने लगी, इससे अनेक संस्थाओं के सदस्य बनकर उसे उन्मूलन करने का प्रयास आज तक जारी है। लगभग ३० वर्ष से आप शुजालपुर मण्डी में व्यवसाय कर रहे हैं। ज्यों-ज्यों आपकी अवस्था बढ़ती जा रही है, त्यों-त्यों ही भगवत्कृपा से आप सौजन्यता युक्त सार्वजनिक कार्यों में उदारतापूर्ण भाग ले रहे हैं। यथा—नेत्रदान यज्ञ, बाढ़, अग्नि, दुर्भिक्ष, पीड़ित जन सहाय, विष्णु महायज्ञ, गायत्री महायज्ञ, मानस यज्ञ, बालमन्दिर, महाविद्यालय, प्रशस्त अनुदान से आपकी कई पदों पर नियुक्ति कर जनता-जनार्दन आपसे तनुजा-वित्तजा सेवा लेकर आपको सम्मानित कर रही है। अखिल भारतीय पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद् की स्थापना से ही आप कार्यकारिणी समिति के सदस्य निर्वाचित किए जा रहे हैं। पुष्टिमार्गीय अन्य प्रवृत्तियों में भी आप उदारतापूर्ण आर्थिक सेवा करते रहते हैं। इस संस्था के रु. १००१/– के विशिष्ठ आजीवन सदस्य बनकर भी तनुजा सेवा भावी होने से आपने आस-पास लगभग १० अन्य स्थानों में संस्था के सदस्य बनाने व साहित्य वितरण की अनुपम सेवा कर रहे हैं। आप इस संस्था की जो आप सराहनीय सेवा कर रहे हैं, उसके लिए यह संस्था आपका सादर आभार स्वीकार करते हुए आपको धन्यवादार्पण करती हैं।

प. भ. श्री विट्ठलदासजी नीमा, इन्दौर—

आपने निवास स्थान धार में १५ वर्ष की उमर से ही चाँदी-सोने का व्यवसाय पूज्य पिताजी जमनादासजी की छत्र-छाया में करना आरम्भ किया और १५ वर्ष के अनुभव के बाद इन्दौर में भी इसी व्यवसाय को बहुत निपुणता से सञ्चालन कर रहे हैं। पुष्टिमार्गीय एवं अन्य सार्वजनिक कार्यों में आपकी बहुत रुचि है। सार्वजनिक कार्यों में उपस्थित होने से वैष्णव मित्र मण्डल एवं अ. भा. पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद् के तथा लगभग १० अन्य संस्थाओं के आप कार्यकर्त्ता हैं। पुष्टिमार्ग प्रचार की इतनी तीव्र अभिलाषा रहती है कि निज खर्च से पाँच-पाँच हजार प्रतियाँ स्तोत्र पद-कीर्तन की पुस्तिकाएँ तथा स्वरूपदर्शन की पुस्तिकाएँ छपवाकर न्यूनतम न्यौछावर में अनेक वैष्णवों तक पहुँचाई। हमारे मण्डल का साहित्य वितरण एवं नये सदस्य बनाने की सेवा का पूर्ण सहयोग आपका मिल रहा है। इस अलौकिक निष्काम सेवा के लिए आपको यह संस्था सादर धन्यवाद अर्पण करती है।

प. भ. श्री हरिप्रसादजी शर्मा, बी.ए., हिन्दी विशारद, आगरा—

आप प. भ. श्री मोहनलालजी आगरा वालों के ज्येष्ठ सुपुत्र हैं। बाल्यावस्था में पूज्य पिताजी श्री ठाकुरजी की छोटी-मोटी सेवा देते तथा पद-कीर्तन कण्ठस्थ कराते, भगवद्-कथा, कीर्तनादि सुनने से भगवद्भाव कोमल हृदय में अंकुरित हुए, जिससे भगवत्सेवा में अधिक रुचि है। आगरा में अंग्रेजी साहित्य एम.ए. (इंगलिश) में शिक्षा ग्रहण करते-करते मीलिट्री ऑडिटर के स्थान पर नियुक्ति होने से अध्ययन स्थगित रहा। पञ्चम गृहाधीश पू. पा. गो. श्री गोविन्दरायजी महाराज द्वारा श्री गोकुलेन्दु प्रभु की सान्निध्य में आपका ब्रह्म सम्बन्ध हुआ। पू. पा. गो. श्री पुरुषोत्तमलालजी महाराज कोटा वालों ने सत्संग मण्डल की स्थापना आगरे में कर मन्त्री आपको नियुक्त किया, तब से ही पुष्टिमार्गीय सार्वजनिक सेवारत हैं। भगवत्कृपा से आपकी पत्नी उर्मिलादेवी भगवत्सेवा में परमोपयोगी सिद्ध हो रही है। आप भगवल्लीला के पद-रचना करते हैं. एक चरण 'श्री गोपीजन वल्लभाय है हमारी सम्प्रदाय' पर ही एक पदावली ग्रन्थ की रचना भी की है। कई वर्षों से पुरुषोत्तम मास भर श्री नाथजी बाबा के दर्शनों की झाँकी का सौभाग्य प्राप्त है। ८४ कोस की दो व्रज-यात्राओं का सम्पूर्ण प्रबन्ध आपने सुचारु रूप से किया है। आगरे में वैष्णव महानुभावों के घरों में रविवार को सेवा की रीति उन्हें समझाकर शृङ्गार धरना सिखाना, अपने घर पर मनोरथ कर उनको भगवत्सेवा में प्रोत्साहित कर हरि गुरु वैष्णव सेवा परायणता का परिचय दे रहे हैं। सन् १९७२ से अ. भा. पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद् के मन्त्री पद से यथायोग्य सेवा कर रहे हैं। इस संस्था के स्वयं सदस्य हैं और सदस्य बनाने में प्रयत्नशील रहते हैं, जिसके लिए यह संस्था आपको धन्यवाद देती हैं।

प. भ. ओमप्रकाशजी ग्रोवर एवं ओमप्रकाशजी चौपड़ा, दिल्ली—

यह मित्र युगल इस संस्था के सदस्य एवं रेल विद्युत के कार्यकर्त्ता हैं, परन्तु पुष्टिमार्गीय प्रचार की सुन्दर भावना प्रभु कृपा से आप दोनों के हृदय में हैं। पुष्टिमार्गीय सत्संग मण्डल जिसकी स्थापना दिल्ली में सन् १९४८ में हो गई थी और उसकी सञ्चालन सेवा दास के पास थी। सन् १९६० में रेल सेवा से निवृत्त होने से इस सत्संग मण्डल का सम्पूर्ण भार युगल मित्र ओमप्रकाशजी ग्रोवर व ओमप्रकाशजी चौपड़ा को भेंट कर मुझे जोधपुर आना पड़ा। तब से ही यह युगल मित्र अनिर्वचनीय सेवा सत्संग मण्डल की कर रहे हैं। इस मण्डल को इतनी उन्नत स्थिति में मैं कदापि नहीं ला सकता था। ओमप्रकाशजी ग्रोवर श्री सुबोधिनीजी का हिन्दी अनुवाद का स्वयं पहले मननपूर्वक अध्ययन कर फिर सत्संग में साधारण शैली में समझाते हैं, जिससे श्रोताओं की इस ग्रन्थ के पढ़ने में रुचि बढ़ती है। चौपड़ाजी को इस संस्था की साहित्य वितरण, सदस्य बनाने में आर्थिक सेवा एकत्रित करने का सौभाग्य प्राप्त है। ग्रोवर-चौपड़ा मित्र युगल को प्रभु रसमयी भक्ति का दान करते हुए तथा स्वमार्गीय सेवा में रुचि बढ़ाते हुए इन्हें चिरञ्जीव करें, ऐसी प्रभु से सदैव प्रार्थना है। इस संस्था को सहयोग देने के लिए इन दोनों मित्रों को हार्दिक बधाई व संस्था की ओर से धन्यवाद है।

प. भ. श्रीनाथजी पुरोहित, जोधपुर—

आपने श्री सुमेर पुष्टिकर हाई स्कूल में सन् १९६२ तक अध्यापन कार्य कर लगभग १४ वर्षों पूर्व अवकाश प्राप्त किया। सन् १९५८ में नाथद्वारा मन्दिर संकट निवारणार्थ राजस्थान हाई कोर्ट जोधपुर में दावा करने के लिए वैष्णव समाज से अपूर्व आर्थिक सेवा प्राप्त कर उसकी समुचित

व्यवस्था का श्रेय आपको ही है। अ. भा. पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद् की जोधपुर शाखा के मन्त्री पद पर कई वर्षों तक आपने सेवा की। सन् १९६३ से इस संस्था में सहायक मन्त्री पद से कार्य करने लगे। आप इस संस्था के सदस्य भी बने तथा १२ वर्ष तक आपने उत्साहपूर्वक कार्य किया। एक वैतनिक कार्यकर्त्ता होते हुए भी जिस लगन व निःस्वार्थ भावना से जो कार्य किया, उसका ही फल है कि इतने शीघ्र हम सम्पूर्ण दशम स्कन्ध की सुबोधिनीजी हिन्दी अनुवाद के दर्शन आज कर रहे हैं; क्योंकि कार्यालय की ओर से मैं निश्चिन्त था, आर्थिक सेवा निमित्त मुझे बाहर रहना पड़ता था, यहाँ अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार मार्गदर्शन दे देता था। अस्वस्थता के कारण सखेद आपका त्याग पत्र ता. १ जनवरी १९७५ से स्वीकार करना पड़ा, तब से ही साप्ताहिक सत्संग मण्डली का आयोजन कर इस नगर के वैष्णव समाज को आप पवित्र कर रहे हैं। आपकी इन अनमोल सेवाओं के लिए संस्था की ओर से आपको हार्दिक धन्यवाद निवेदन करने में मुझे परम हर्ष है।

प. भ. श्यामप्रिया (गोटा) बाई पुरोहित, जोधपुर–

प. भ. श्री मदनमोहनजी पुरोहित बी.ए. की आप धर्मपत्नी हैं, आप चिरकाल से महिला भगवत्मण्डली आयोजन से सेवा कर रही हैं। कण्ठ मधुर होने तथा पुष्टिमार्गीय धोलपद आपको कण्ठाग्र होने से स्वयं भी नाम सेवा परायण है। घर में भगवत्सेवा ~~मस्से कर पवित्र दिलवाना~~ ×, उनके माथे सेवा पधराकर उनके घर व जन को पवित्र कराने का कार्यक्रम कई वर्षों से आपका चल रहा है। सांप्रदायिक कार्य-कलापों में अधिक रुचि होने के कारण इस संस्था की स्थापना होते ही स्वयं अपनी ज्येष्ठा भगिनी श्रीमती वल्लभप्रियाजी सहित इस संस्था की सदस्य बनकर अन्य महिलाओं को भी सदस्य बनाने में आपका सहयोग प्राप्त है। आपकी सराहनीय सेवा के लिए यह संस्था आपको सादर धन्यवाद देती है।

प.भ. कुमारी विमलाजी भाटिया, एम.एस.सी. (ज़ूलॉजी), जोधपुर–

आप हैदराबाद सिन्ध निवासी प. भ. श्री तेजभानजी भाटिया की सुपुत्री हैं। आपकी पूज्य माताजी से ऐसी सूचना प्राप्त हुई कि जब ये उदर में थी, उन्होंने श्री यमुनाजी की आराधना की थी कि यह कन्या भगवद्भक्त व गुणवान हो, जिसके फलस्वरूप केवल १९ वर्ष की अवस्था में आपने एम.एस.सी. (ज़ूलॉजी) की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया, जिससे आपकी लेकचरार पद की नियुक्ति का आदेश कॉलिज से प्राप्त हुआ। परन्तु उस सेवा का आपने निषेध कर, श्रीमद्भगवद् गीता, श्रीमद्भागवत्, रामायण, महाभारत, पुष्टिमार्गीय साहित्य षोडश ग्रन्थ शिक्षा-पत्र, वार्ता साहित्य इत्यादि का मननपूर्वक अध्ययन करते हुए सस्नेह भगवत्सेवा से हाथ पवित्र कर रही हैं, आप एक कुशाग्र बुद्धि, तीव्र स्मरण शक्ति पुष्टिमार्गीय भाव व विचारों की जिज्ञासु महिला हैं। आपने इस संस्था के इस पुष्प प्रकाशन में उचित सहायता कर पुष्टिमार्गीय साहित्य सेवा का सुन्दर परिचय दिया, जिससे आप धन्यवाद की पात्र हैं। आपको भगवत्सेवा के साथ-साथ साम्प्रदायिक साहित्य सेवा में भी ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति प्रभु प्रदान करें, ऐसी सदैन्य प्रार्थना है।

× से पवित्र होना, अन्य महिलाओं को ब्रह्म-सम्बन्ध दिलवाना,

॥ श्री हरिः ॥

श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण (महाप्रभुजी) की दो प्रकार की सृष्टि है— 'बिन्दु सृष्टि' के अन्तर्गत प्रवर आचार्य (गोस्वामी बालक) महानुभाव हैं एवं 'नाद सृष्टि' आप श्री द्वारा समस्त दीक्षित वैष्णव समाज है। 'श्री बिन्दु सृष्टि' केवल साष्टाङ्ग दण्डवत् द्वारा ही निस्साधन 'नाद सृष्टि' द्वारा सम्मानित है। प्रवर आचार्यचरण महानुभावों की निज सेवक समाज पर कितनी अलौकिक कृपा है, जो विश्व के किसी धर्माचार्य महोदय में दृष्टिगोचर नहीं होती, सो गोस्वामी श्री हरिरायजी महाप्रभु (रसिक) एवं गो. श्री मट्टूलालजी (गोपिकालङ्कारजी-रसिकदासजन) महाराज विरचित निम्न पदों से स्पष्ट है।

राग विहाग

हों वारी इन वल्लभीयन पर।
अपने तन को करों बिछौना शीश धरूँ इनके चरनन तर॥
नेह भरी देखों, मेरी अँखियन, मण्डल मध्य विराजत गिरधर।
ये तो मेरे प्राणजीवन धन, दान दिये हैं श्रीवल्लभ वर॥
पुष्टि प्रकार प्रगट करवे को, फिर प्रगटे श्रीविट्ठलद्विज वर।
रसिक सदा आस इनकी कर, वल्लभीयन की चरणरज अनुसर॥

卐

राग विहाग

आये मेरे श्रीवल्लभ के दास।
इनकी सरवर नहिं त्रिभुवन में, सुन्यो वेद इतिहास॥१॥
व्रज रसना भावना-भाविक, सदा मन प्रसन्न हुलास।
मेघ गम्भीर गरजत वचनामृत, बरखत सुख की रास॥२॥
कोटि जन्म अघ हरत करत सुधि, मेटत सब विधि त्रास।
नाम लेत आनन्द उपजत, भजनानन्द विकास॥३॥
तिनको संग तनक जो होई, हरि बसे आय पास।
वागधीश पद कमल याहि सिर, निर्भय करत विलास॥४॥
ताकी महिमा को कवि वरने, सरस्वती अरु व्यास।
तीर्थन को अति तीरथ कहियत, पदरज पीत सुवास॥५॥
लक्ष्मी करत अपेक्षा जिनकी, निस दिन करत निवास।
भक्ति-मुक्ति संग लागी डोलैं, करत अनन्य उपास॥६॥
कोटि समुद्र करुणा नैनन में, सब गुण तेज प्रकास।
रसिकदास जन को जब दीजै, निज जन की पद आस॥७॥

卐

आश्रय का पद

भरोसो दृढ़ इन चरणन केरो।
श्रीवल्लभ नख चन्द्र छटा बिन, सब जग माहिं अन्धेरो॥१॥
साधन और नहिं या कलि में जासों होय निवेरो।
सूर कहा कहे दुविध आंधरो, बिना मोल को चेरो॥२॥

卐

श्री सुबोधिनी प्रकाशन मंडल (रजिस्टर्ड)
जोधपुर (राजस्थान)